• वर्ष ६६ • अंक १२ • मूल्य ₹ २०

जून (द्वितीय) २०२४

पाक्षिक

परोपकारी

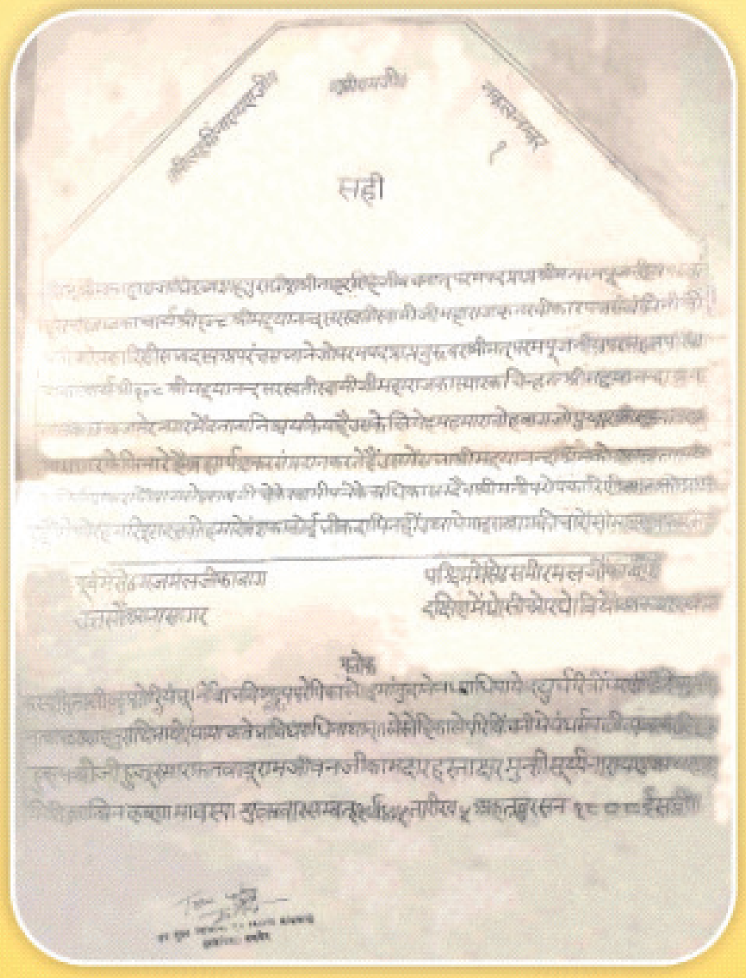
सही

इतिहास के हस्ताक्षर

ऋषि उद्यान परोपकारिणी सभा को देने संबंधी शाहपुराधीश की ओर से प्रदत्त ताम्र पत्र

(विस्तृत विवरण कवर पृष्ठ दो पर)

इतिहास के हस्ताक्षर

(प्रथम पृष्ठ के शीर्षक-चित्र का विवरण)

महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी श्रीमती परोपकारिणी सभा के वर्षों तक मन्त्री व प्रधान रहे महर्षि के अनन्य भक्त मेवाड़ के अन्तर्गत शाहपुरा राज्य के शासक श्रीमन्त नाहरसिंह वर्मा जी ने अपना निजी बाग महर्षि की स्मृति में श्रीमती परोपकारिणी सभा को दान किया था। उसी का दस्तावेज ताम्रपत्र पर उत्कीर्ण करा कर शाहपुराधीश ने सभा को प्रदान किया था। इस पर तिथि इस प्रकार अंकित है-
''मिति आश्विन कृष्णामावस्या शुक्रवार सम्वत् 1945 तारीख 5 अक्टूबर सन् 1888 ईसवी।''

ध्यातव्य है कि आज यह बाग 'ऋषि उद्यान, अजमेर' के नाम से प्रसिद्ध है। इसी उद्यान में ऋषि की अन्त्येष्टि के उपरान्त उनकी भस्म व अस्थियाँ भूमिसात की गई थीं।

आज ऋषि उद्यान वैदिक धर्म से जुड़ी विभिन्न गतिविधियों का प्रमुख केन्द्र है। महर्षि के निजी उपयोग की वस्तुओं का संग्रहालय भी इसी परिसर में है।

श्रीमन्महाराज शाहपुराधीश्वर नहारसिंह जी की स्मृति में विनम्र प्रणति।

'इदं नमः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः।'

श्री नाहरसिंह जी

महर्षि दयानन्द सरस्वती की
उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा
का मुखपत्र

ओ३म्

*विद्याविलाससमनसो धृतशीलशिक्षाः,
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः।
संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकाराः।।*

वर्ष : ६६ अंक : १२

दयानन्दाब्दः २००

विक्रम संवत् - ज्येष्ठ शुक्ल २०८१

कलि संवत् - ५१२५

सृष्टि संवत् - १,९६,०८,५३,१२५

सम्पादक

डॉ. वेदपाल

प्रकाशक- परोपकारिणी सभा,
केसरगंज, अजमेर- ३०५००१

दूरभाषः ०१४५-२४६०१६४
०८८९०३१६९६१

मुद्रक-देवमुनि-भूदेव उपाध्याय
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
७७४२२२९३२७

परोपकारी का शुल्क

भारत में

एक वर्ष-४०० रु.

पाँच वर्ष-१५०० रु.

आजीवन (२० वर्ष) -६००० रु.

एक प्रति - २०/- रु.

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०
०७८७८३०३३८२

ऋषि उद्यान : ०१४५-२९४८६९८

RNI. No. ३९५९ / ५९

परोपकारी

जून द्वितीय, २०२४

अनुक्रम

०१. महर्षि के दाय का चिन्तन	सम्पादकीय	०४
०२. यज्ञिय व्यवहार के आदर्श पुरुष...	प्रो. नरेश कुमार धीमान्	०५
०३. आर्यों की शान क्या निराली थी!	प्रो. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	११
०४. मोक्ष और उसका प्राप्ति के साधन	पं. बालकृष्ण शर्मा	१४
०५. ज्ञान सूक्त-१५	डॉ. धर्मवीर	२०
०६. प्रतिक्रिया	श्री रामनिवास गुणग्राहक	२३
०७. बस तो गया नगर में लेकिन...	डॉ. रामवीर	२४
०८. ऋषि दयानन्द की प्रथम जन्म...	डॉ. ज्वलन्त कुमार शास्त्री	२५
* परोपकारिणी सभा द्वारा प्रकाशित पुस्तकों पर विशेष छूट		२९
०९.संस्था की ओर से....		३०
१०. निवेदन		३३
* प्रवेश सूचना		३३
* 'सत्यार्थ प्रकाश' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति		३४

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएँ
www.paropkarinisabha.com→gallery→videos

*'परोपकारी' पत्रिका में प्रकाशित सभी आलेखों में व्यक्त विचार लेखकों के निजी हैं। इन्हें सम्पादकीय नीति नहीं समझा जाये।
किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।*

सम्पादकीय

महर्षि के दाय का चिन्तन

महर्षि दयानन्द द्विजन्मशताब्दी के अवसर पर भारत सरकार के सहयोग से अनेक सम्मेलन व संगोष्ठियां आयोजित की जा रही हैं। दिल्ली के इन्दिरा गांधी इन्डोर स्टेडियम, तालकटोरा स्टेडियम तथा महर्षि की जन्मस्थली टंकारा के साथ कई राज्यों में अभी तक इस प्रकार के आयोजन हो चुके हैं। इन सब आयोजनों का अपना महत्त्व है। अपनी भव्यता से यह समुपस्थित तथा उसके सम्पर्क में आने वालों को यत्किंचित् विचार सामग्री तथा प्रेरणा तो प्रदान करते ही हैं। यदि इनके पश्चात् अनवरत रूप से उन विचारों को पुनः पुनः प्रसारित न किया जाए तथा उन्हें विस्मृति के गर्त में जाने से रोकने के प्रयत्न न किए जाएं तो इनकी सफलता आंशिक ही कही जाएगी।

किसी भी महापुरुष का दाय अथवा विरासत उसके विचार होते हैं। कुछ विचार सामयिक रूप से उपयोगी होते हुए भी कुछ समय पश्चात् अप्रासंगिक हो जाते हैं। साथ ही कुछ विचार शताब्दियों तक भी प्रासंगिक बने रहते हैं। यह वैचारिक दाय/विरासत अन्य सभी प्रकार के दाय से बढ़कर मूल्यवान् होने के कारण संरक्षण-संवर्धन की अपेक्षा रखता है, किन्तु इसका प्रसार करने के लिए बड़े-बड़े सम्मेलनों की अपेक्षा उसे रेखांकित करने में समर्थ बुद्धिजीवियों का संवाद या विमर्श अधिक प्रभावी माध्यम है।

भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान (I.I.A.S) शिमला, भारत सरकार का प्रतिष्ठित संस्थान है। इस संस्थान ने ''दयानन्द सरस्वती और उनकी विरासत'' "Dayananda Saraswati and his Legacy" विषय पर ९-११ मई २०२४ में त्रिदिवसीय अन्तर्राष्ट्रीय कांफ्रेन्स आयोजित की।

उक्त सम्मेलन में देश-विदेश के २४ विद्वानों ने विस्तारपूर्वक महर्षि की विरासत को रेखांकित किया। न्यूयार्क, ह्यूस्टन, ट्रिनिडाड़ के प्रतिनिधि विद्वानों के साथ आर्य प्रतिनिधि सभा अमेरिका के मन्त्री ने भी विचार प्रस्तुत किए। भारतवर्ष के बीस विद्वान् भी प्रतिभागी थे। संस्थान की अध्यक्षा सुप्रतिष्ठित विदुषी प्रो. शशि प्रभा कुमार तथा उपाध्यक्ष प्रो. शैलेन्द्र राज मेहता प्रत्येक सत्र ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण सम्मेलन में उद्‌धाटन से समापन तक न केवल उपस्थित रहे, अपितु परिचर्चा में सक्रिय रूप से सम्मिलित रहे।

प्रतिभागी विद्वान् किसी एक विषय अथवा एक प्रदेश से न होकर अध्ययन-अध्यापन के विविध क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करने वाले कुलपति, पूर्व कुलपति, प्रोफेसर तथा अपने क्षेत्र के लब्ध प्रतिष्ठ विद्वान् थे। अतः विमर्श की व्यापकता भी थी।

महापुरुषों के विचार क्षेत्र प्रायः आध्यात्मिक, धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, ज्ञान विषयक, आचारपरक, मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं तथा दैनन्दिन व्यवहार को लेकर रहे हैं। महर्षि दयानन्द के चिन्तन का फलक इतना व्यापक है कि उसे किसी एक क्षेत्र तक सीमित करना उसके साथ न्याय नहीं होगा।

प्रकृत विद्वत्सम्मेलन में महर्षि की अध्यात्म विषयक विरासत को 'आर्याभिविनय' इस प्रार्थना पुस्तक के माध्यम से सुस्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया गया। राजकर्मचारी, ऋषि, सामाजिक विरासत महर्षि के पत्र-व्यवहार के आलोक में, तथा महर्षि ने राजस्थान को राजनैतिक रूप से किस प्रकार प्रभावित किया? आदि तथा ज्ञान क्षेत्र की विरासत सुस्पष्ट की गई।

महर्षि का समग्र वाङ्मय विमर्श का विषय रहा। इतनी गम्भीरतापूर्वक महर्षि विरासत चिन्तन का यह प्रथम प्रयास था। ऐसा हमारा ही नहीं, अपितु सभी विद्वज्जन का अभिमत था, किन्तु एक प्रश्न अनुत्तरित रहा- आर्यसमाज से असम्बद्ध किन्तु एक बहुज्ञ विद्वान् ने पूछा कि- इतनी समृद्ध विरासत के बाद भी महर्षि के विचार सीमित क्षेत्र... तक क्यों है? विश्वव्यापी क्यों नहीं?

ऐसा नहीं है कि उपस्थित विज्ञजनों को इसका उत्तर ज्ञात नहीं था, किन्तु जानते हुए भी इसकी मीमांसा/विवेचन नहीं किया गया। क्यों? दो पंक्ति में इतना कहना ही पर्याप्त रहेगा-

अनेकों प्रश्न ऐसे हैं, जो दुहराये नहीं जाते।
बहुत उत्तर भी ऐसे हैं, जो बतलाये नहीं जाते।

- डॉ. वेदपाल

यज्ञिय व्यवहार के आदर्श पुरुष का स्वागत

[–प्रो० नरेश कुमार धीमान्, चेयर प्रोफेसर, महर्षि दयानन्द सरस्वती चेयर (यूजीसी),
महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर (राजस्थान)]

[ऋषिः–परमेष्ठी प्रजापतिः, देवता–यज्ञः, छन्दः–स्वराड् जगती (४८+२), स्वरः–निषादः]

विषयः– पुनः स यज्ञः कीदृशोऽस्ति कथं कर्तव्यश्चेत्युपदिश्यते॥

(उक्त यज्ञ किस प्रकार का है, और किस प्रकार से करना चाहिये, इस विषय का उपदेश प्रस्तुत मन्त्र में किया गया है॥)

अग्नेस्तनूरसि वाचो विसर्जनं[1] देववीतये त्वा गृह्णामि[2] बृहद्ग्रावासि वानस्पत्यः[3] सऽ इदं देवेभ्यो हविः शमीष्व सुशमि शमीष्व[4]। +हविष्कृदेहि हविष्कृदेहि[5]॥ –यजु० १.१५॥

[अनु०-०, नि०-१४, उ०-१६, स्व०-१०, प्र०-१७ = ५७ अक्ष०, क०मं०-४, पा०-५]

पदपाठः– **अग्नेः। तनूः। असि। वाचः।** विसर्जनमिति वि॒ऽ सर्जनम्।[1] देववीतयऽ इति देवऽ वीतये। **त्वा। गृह्णामि।**[2] बृहद्ग्रावेति बृहत्ऽ ग्रावा। **असि। वानस्पत्यः।**[3] **सः। इदम्। देवेभ्यः। हविः।** शमीष्व – शमिष्वेति शमिष्व। **सुशमीति सुऽ शमि।** शमीष्व – शमिष्वेति शमिष्व॥[4] **हविष्कृत् – हविःकृदिति हविःऽ कृत्। आ। इहि।** *हविष्कृत् – हविःकृदिति हविःऽ कृत्। आ। इहि*[5] **॥१५॥**

[अनु०-२२, नि०-२४, उ०-३२, स्व०-१९, प्र०-१५ = ११२ अक्ष०, अव०प०-७+१, ग०प०-३, स०प०-२४]

मन्त्र-पद	संस्कृत-पदार्थ (म० द० स०)	दयानन्दभाष्य-बोधामृत
अग्नेः	भौतिकस्य॥	हे विद्वान् ! आप अग्नि के तुल्य
तनूः	शरीरवत्तस्य संयोगेन॥ विस्तृतो यज्ञः॥	तेजस्वी शरीर वाले
असि	भवति॥ अत्र सर्वत्र पुरुषव्यत्ययः॥	हो।
वाचः	वेदवाण्याः॥	आप वेदवाणी की
विसर्जनम्	यजमानेन होतृभिश्च हविषस्त्यागो मौनं वा॥	विशिष्ट सर्जना हो अर्थात् तुम्हारी वाणी वेदानुकूल उपदेश करने में समर्थ है।
देववीतये	देवानां विदुषां दिव्यगुणानां वा वीतिर्ज्ञानं प्रापणं प्रजनं व्याप्तिः प्रकाशः॥ अन्येभ्य उपदेशनं विविधभोगो वा यस्यां तस्यै। वी	दिव्य गुणों के ज्ञान, प्राप्ति, उत्पत्ति, व्याप्ति, प्रकाश, दूसरों को उपदेश और विविध भोगों के लिये

मन्त्र-पद	संस्कृत-पदार्थ (म० द० स०)	दयानन्दभाष्य-बोधामृत
	गतिव्याप्तिप्रजनकान्त्यसनखादनेषु॥	
त्वा	तमिमं सम्यक् शोधितं हविःसमूहम्॥	मैं आपकी संगति
गृह्णामि	स्वीकरोमि॥	स्वीकार करता हूँ।
बृहद्ग्रावा	बृहच्चासौ ग्रावा च सः॥	आप विशाल पर्वत के तुल्य उच्च और स्थिर
असि	अस्ति॥	हो।
वानस्पत्यः	यो वनस्पतेर्विकारस्तं हविःसंस्कारार्थम्॥	आप रसवान् वनस्पतियों की भाँति वेद-ज्ञान के रस से परिपूर्ण हो।
सः	त्वं यजमानः॥	वह आप
देवेभ्यः	विद्वद्भयो दिव्यगुणेभ्यो वा॥	दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिए
इदम्	यत् प्रत्यक्षं हुतं तत्॥	यह
हविः	संस्कृतं सुगन्ध्यादियुक्तं द्रव्यम्॥	ग्रहण करने योग्य सुसंस्कृत भोज्य पदार्थ
शमीष्व	दुःखनिवृत्तये सुखसम्पादनार्थं कुरुष्व॥ शमु उपशमे इत्यस्माद् बहुलं छन्दसि [अष्टा० २.४.७३] इति श्यनो लुक्। तुरुस्तुशम्यम० (अष्टा० ७.३.९५) इतीडागमः॥ महीधरेणात्र शपो लुगित्यशुद्धं व्याख्यातम्॥	दुःख की निवृत्ति और सुख प्रदान करने वाला बन सके, ऐसा उपदेश कीजिए।
सुशमि	सुष्ठु दुःखं शमितुं शीलं धर्मः पदार्थानां साधुकरणं वा यस्य तत्॥ शमित्यष्टा०॥ अनेन शमेर्घिनुण्॥ इदमपि पदमुवट-महीधराभ्यामन्यथैव व्याख्यातम्॥	यह भोज्य पदार्थ अच्छी प्रकार दुःखों का निवारण करता हुआ उत्तम शान्ति देनेवाला हो, ऐसा
शमीष्व	पुनरुच्चारणं हविषोऽत्यन्तसंस्कार-द्योतनार्थम्॥	शान्तिपूर्ण उपदेश कीजिए।
हविष्कृत्	हविः करोति॥ अनया वेदवाण्या सा हविष्कृद् वाक्॥	यज्ञिय भाव से हव्य रूप में सांसारिक भोज्य पदार्थों का सेवन करने वाले तथा दूसरों को भी उसी प्रकार त्यागभाव से सांसारिक पदार्थों के सेवन का उपदेश करनेवाले विद्वान् पुरुष!
आ, इहि	अध्ययनेनैवैति प्राप्नोति॥	आप आइए।

मन्त्र-पद	संस्कृत-पदार्थ (म० द० स०)	दयानन्दभाष्य-बोधामृत
हविष्कृत्	अत्र यज्ञसम्पादनाय ब्राह्मणक्षत्रिय-वैश्यशूद्राणां चतुर्विधा वेदाध्ययनसंस्कृता सुशिक्षिता वाग् गृह्यते॥	यज्ञ के सम्पादन के लिये ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र – इन चारों वर्णों को वेदाध्ययन द्वारा सुशिक्षित करने में समर्थ विद्वान् पुरुष !
आ, इहि	अयं मन्त्रः। (शत०१।१।४।८-१०) व्याख्यातः॥ १५॥	आप बार-बार आइए, हम आपका स्वागत करते हैं, हम आपकी संगति चाहते हैं।

तत्त्वबोध–

१. अग्नेः[1], तनूः[2], असि[3] – मन्त्र का देवता यज्ञ है। अध्यात्मपक्ष में सृष्टियज्ञ के कर्ता स्वयं परमात्मा इस मन्त्र का वर्ण्य विषय है, वह स्वयं परम तेजस्वी है। सामजिकपक्ष में यज्ञिय व्यवहार से सम्पन्न तेजस्वी विद्वान्, तेजस्वी राजा, तेजस्वी यजमान आदि मन्त्र का वर्ण्य विषय हैं।

२. वाचः[4], विसर्जनम्[5] – परमात्मा से ही वेदवाणी का विसर्जन हुआ है। याज्ञिक लोग वेदमन्त्रों उच्चारण करके यज्ञ में अपनी आहुति का विसर्जन करते हैं। विद्वान् लोग वेदवाणी का विसर्जन अर्थात् उपदेश करते हैं। राजा लोग अपनी तेजस्विता और राजधर्म की पालना के कर्तव्य निर्वाह के लिए स्वयं वेदानुकूल व्यवहार करते हुए अपनी प्रजा से वेदानुकूल आचरण करवाते हैं, यह राजाज्ञा की पालना करवाना ही राजा का वाग्-विसर्जन है।

---

१. अगि गतौ (भ्वादिगणः परस्मैपदी) इति धातोः, 'इदितो नुम् धातोः'(अष्टा० ७.१.५८) इति नुमागमः, 'अङ्गेर्नलोपश्चला:' (उ० ४.५०) इति नि-प्रत्ययः, नलोपश्च, प्रत्यय-स्वरेणान्तोदात्तः–अग्नि। पुंसि षठ्येकवचने ङसि-प्रत्ययः, 'घेर्ङिति'(अष्टा० ७.३.१११) इति गुणादेशः, 'ङसिङसोश्च'(अष्टा० ६.१.१०९) इति पूर्वरूपैकाशः, 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः'(अष्टा० ८.२.५) इति उदात्त-+अनुदात्तः= उदात्तैकादेशः – अग्नेः॥

२. तनु विस्तारे (तनादिगणः, परस्मैपदी) इति धातोः 'कृषिचमितनिधनिसर्जिखर्जिभ्य ऊः ' (उ० १.८१) इति ऊ-प्रत्ययः, पुंसि प्रथमैकवचने, प्रत्यय-स्वरेणैवान्तोदात्तः–तनूः॥

३. अस् भुवि (अदादिगणः, परस्मैपदी) इति धातोर्लटि मध्यमपुरुषैकवचने सिप्-प्रत्ययः – अस् + सिप्। 'कर्तरि शप्' (अष्टा० ३.१.६८) इति शप्, तस्य च 'अदिप्रभृतिभ्यः शपः' (अष्टा० २.४.७२) इति लुक् – अस् + सि। 'तासस्त्योर्लोपः' (अष्टा० ७.४.५०) इत्यस्-धातोः सकारस्य लोपः – असि। सिपः पित्त्वात् सिप्-प्रत्ययोऽनुदात्तः, अतः धातुस्वरेणैवाद्युदात्तत्वम्, ततः स्वरितत्वं च – असि। संहितायां 'तिङ्ङतिङः' (अष्टा० ८.१.२८) इति सर्वानुदात्तत्वम् –'असि'॥

४. वच परिभाषणे (अदादिगणः, परस्मैपदी) इति धातोः 'क्विब्वचिप्रच्छिश्रिस्रुद्रुप्रुज्वां दीर्घोऽसंप्रसारणं च' (उ० २.५८) इति क्विप्-प्रत्ययः, धातोरचो दीर्घादेशः, 'वचिस्वपियजादीनां किति'(अष्टा० ६.१.१५) इति प्राप्तस्य संप्रसारणस्याभवश्च, क्विपः सर्वापहारिलोपत्वात् धातुस्वरेणान्तोदात्तः प्रातिपदिकः– वाच्॥ स्त्रियां षष्ठ्येकवचने ङस्-प्रत्ययः, 'सावेकाचस्तृतीयादिर्विभक्तिः'(अष्टा० ६.१.१६८) इति विभक्तेरुदात्तत्वम्, सति शिष्टस्वरबलीयस्त्वम्, अतएव– वाचः॥

५. विसृज्यते वागनेनेति विसर्जनम्। 'वि' इत्युपसर्गः 'उपसर्गाश्चाभिवर्जम्' (फिट्० ४.१३) इत्याद्युदात्तः। सृज् विसर्गे (दिवादिगणः आत्मनेपदी, तुदादिगणः, परस्मैपदी) इति धातोः करणे ल्युट्, उपपदसमासः, 'गतिकारकोपपदात् कृत्' (अष्टा० ६.२ १३९) इत्युत्तरपदप्रकृतिस्वरः, 'लिति' (अष्टा० ६.१.१९३) इति प्रत्ययात्पूर्वमुदात्तम्, ततः स्वरितप्रचयौ – विसर्जनम्॥

३. देववीतये[6], त्वा[7], गृह्णामि[8] – देव और वीति शब्द अनेकार्थक हैं, पदार्थ में उनका उल्लेख हुआ है। उन सभी दिव्यगुण आदि की प्राप्ति के लिए उपासक उस पूर्वोक्त तेजस्वी परमात्मा का, तेजस्वी विद्वान् का अथवा तेजस्वी राजा के आश्रय का वरण करता है।

४. बृहद्ग्रावा[9], असि, वानस्पत्यः[10] – परमात्मा बृहद्ग्रावा अर्थात् महान् और स्तुतियोग्य है, वही समस्त वनस्पतियों का आदिकारण है। तेजस्वी विद्वान् और राजा भी बृहद्ग्रावा अर्थात् विशाल पर्वतों के तुल्य विशालहृदय और स्थिरचित्त हैं, उनका शरीर वनस्पतियों से पोषित है अर्थात् सात्त्विक शाक-वनस्पतियाँ ही उनका आहार है, मांस आदि अभक्ष्य पदार्थ नहीं।

५. सः[11], इदम्[12], देवेभ्यः[13], हविः[14],

६. दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु (दिवादिगणः परस्मैपदी) इति धातोः पचाद्यच्। 'चितः'(अष्टा० ६.१.१६३) इत्यन्तोदात्तो 'देव' प्रातिपदिकः॥ वयनमिति वीतिः। वी गतिव्याप्तिप्रजनकान्त्यसनखादनेषु (अदादिगणः परस्मैपदी) इति धातोः स्त्रियां क्तिन्-प्रत्ययः, 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' (अष्टा० ६.१.१९७) इत्याद्युदात्तत्वम्, तदुत्तरस्य स्वरितत्वं च– 'वीति'प्रातिपदिकः॥ देवानां वीतिः, षष्ठीतत्पुरुषसमासः। दासीभारादिगणे पाठात् 'कुरुगार्हपतरिक्तगुर्वसूतजरत्यश्लीलदृढरूपापारेवडवातैतिलकद्रूःपण्यकम्बलो दासीभाराणां च' (अष्टा० ६.२.४२) इति पूर्वपदप्रकृतिस्वरेण– 'देववीति', इत्यस्मात् चतुर्थ्येकवचने विभक्तेरनुदात्तत्वात् स एव स्वरः– 'देववीतये'॥

७. 'त्वाम्' इति स्थाने प्रयुक्तम्, 'त्वामौ द्वितीयायाः' (अष्टा० ८.१.२३), 'अनुदात्तं सर्वमपादादौ'(अष्टा०८.१.१८) इत्यतः सर्वानुदात्तत्वमनुवर्तते– 'त्वा'॥

८. ग्रह उपादाने(क्र्यादिगणः उभयपदी) इति धातोः लटि उत्तमपुरुषैकवचने, 'क्र्यादिभ्यः श्ना' (अष्टा०३.१.८१) – ग्रह् + श्ना + मिप्। 'ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चतिपृच्छतिभृज्जतीनां ङिति च' (अष्टा० ६.१.१६) इति सम्प्रसारणे – गृह् + ना + मि। 'रषाभ्याम् णत्वे ऋकारग्रहणम्' (अष्टा० ८.४.१-१) इति वार्तिकेन णत्वम्। श्ना-विकरणमाद्युदात्तम्। अनुदात्तस्य मिपः 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः' (अष्टा० ८.४.६६) इति स्वरितत्वे 'गृह्णामि' इति रूपम्। संहितायां 'तिङ्ङतिङः' (अष्टा० ८.१.२८) इति सर्वानुदात्तः – 'गृह्णामि'॥

९. बर्हति वर्धतेऽसौ बृहत्। बृह् वृद्धौ (भ्वादिगणः परस्मैपदी) इति धातोः 'वर्तमाने पृषद्बृहन्महज्जगच्छतृवच्च' (उ० २.८४) इति अति-प्रत्ययान्तो निपातितः, शतृवद्भावश्च, धातुस्वरेण चाद्युदात्तः– 'बृहत्' प्रातिपदिकः॥ गॄ निगरणे (तुदादिगणः, परस्मैपदी) गिरत्युदकं वर्षार्थम्। 'अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते' (अष्टा० ३.२.७५) इति क्वनिप्-प्रत्ययः, तस्य पित्वादनुदात्तत्वे धातुस्वरेणैवाद्युदात्तः। छान्दस आडागमः ततः 'उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्य' (अष्टा०८।२।४) इति स्वरितत्वे प्राप्ते छान्दसमुदात्तत्वम्, पुंसि प्रथमैकवचने – 'ग्रावा'॥ यद्वा पृषोदरादित्वाद् 'ग्रा' आदेशः॥ बृहच्चासौ ग्रावा च सः, कर्मधारयसमासः, 'समासस्य' (अष्टा०६.१.२२३) इति समासान्तोदात्तत्वे प्राप्ते छान्दस-पूर्वपदान्तोदात्तत्वम्, पुंसि प्रथमैकवचने –बृहद्ग्रावा॥

१०. वनतीति वनम्, बहुवृक्षयुक्तस्थानम्। वन् सम्भक्तौ (भ्वादिगणः परस्मैपदी) 'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः' (अष्टा० ३.१.१३४) इत्यच्-प्रत्ययः, 'चितः' (अष्टा०६.१.१६३) इत्यन्तोदात्तत्वं प्राप्तं, तत्प्रतिषिध्य नपुंसके 'नब्विषयस्यानिसन्तस्य'(उणा० २.३) इत्याद्युदात्तत्वे, ततः स्वरितत्वे प्रथमैकवचने – वन् + अच् = वनम्॥ पाति रक्षतीति पतिः। पा रक्षणे (अदादिगणः परस्मैपदी) इति धातोः 'पातेर्डतिः' (उणा० ४.५८) इति डति-प्रत्ययः, डित्वादभस्यापि टेर्लोपः, प्रत्ययस्वरेणाद्युदात्तः, पुंसि प्रथमैकवचने – पतिः॥ वनानां पतिः – वनस्पतिः, षष्ठी तत्पुरुषः। वनपतिशब्दावाद्युदात्तौ, 'पारस्करप्रभृतीनि च संज्ञायाम्'(अष्टा० ६.१.१५७) इति पारस्करप्रभृतित्वात् सुडागमः, पुंसि प्रथमैकवचने– 'वनस्पतिः'॥ वनस्पतेर्विकारो वानस्पत्यः। 'दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः'(अष्टा० ४.१.८५) इति ण्य-प्रत्ययः, प्रत्ययस्वरेणैवान्तोदात्तः, पुंसि प्रथमैकवचने, 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्'(अष्टा० ६.१.१५८), 'उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतरः'(अष्टा० १.२.४०) – वानस्पत्यः॥

शमीष्व[15] **, सुशर्मि**[16] **, शमीष्व –** मन्त्रांश में हवि की कामना की गई है। परमात्मा से प्रार्थना की गई है कि हे प्रभो ! जो भोज्य पदार्थ आपने हमें प्रदान किए हैं, वे हवि रूप हों अर्थात् वह यज्ञशेष के तुल्य हों, आप द्वारा प्रदत्त पदार्थों में हमारी आसक्ति न हो, हम त्यागपूर्वक ही उनका भोग करें, तभी वह हवि रूप भोजन हमारे अन्दर दिव्यगुणों का आधान करने वाले होंगे और शान्तिदायक होंगे। तेजस्वी विद्वानों से निवेदन किया गया है कि वे वैसा उपदेश करते रहें, जिससे पदार्थों के प्रति त्यागभाव सुदृढ़ हो। राजा से निवेदन है कि राजकीय नियमों में ही कोई ऐसी व्यवस्था की जाए जिसकी पालना के फलस्वरूप त्यागवृत्ति की भावना तीव्र हो और समाज में अतिलोभ से उपजने वाले दुर्गुणों से दूर रहकर प्रजा सुखपूर्ण और अत्युत्तम शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत कर सके।

६. हविष्कृत्[17] **, आ**[18] **, इहि**[19] **; हविष्कृत्, आ, इहि –** परमात्मा इस सृष्टि यज्ञ में समस्त प्राणियों के भोजन-निर्वाह के लिए हवि प्रदान करनेवाला होने

---

११. तद् इति सार्वनामिक-प्रातिपदिकात्, पुंसि प्रथमैकवचने सु-प्रत्ययः– तद् + सु। 'त्यदादीनामः' (अष्टा० ७.२.१०२) अत्यकारादेशः – त+अ+स्। 'अतो गुणे' (अष्टा० ६.१.९७) इति पररूपैकादेशः– त + स्,, 'तदोः सः सावनन्त्ययोः' (अष्टा० ७.२.१०६) इति सकारादेशः – सस् , सस्य रुत्वं विसर्गश्च, 'फिषोन्त उदात्तः' (फिट्०–१) इति प्रत्यय-स्वरेणान्तोदात्तः– 'सः'॥

१२. इदि परमैश्वर्ये (भ्वादिगणः परस्मैपदी) इति धातोः 'इन्देः कमिन्नलोपश्च' (उणा० ४.१५६) इति कमिन्-प्रत्ययः, इन्देर्नलोपः, नित्त्वाच्च 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' (अष्टा० ६.१.१९७) इत्याद्युदात्तः प्रातिपदिकः – इदम्। ततो नपुंसके प्रथमैकवचने 'स्वौजसमौट्छष्टाभ्याम्भिस्ङेभ्याम्भ्यस्ङसिभ्याम्भ्यस्ङसोसाङ्ङ्योस्सुप्' (अष्टा० ४.१.२) इति सु-प्रत्ययः, अनुदात्तश्च, 'स्वमोर्नपुंसकात्' (अष्टा० ७.१.२३) इति सु-प्रत्ययस्य लुक्, प्रातिपदिकस्वरेणैव चाद्युदात्तः, तदुत्तरस्य स्वरितश्च – 'इदम्'॥

१३. दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्न-कान्तिगतिषु(दिवादिगणः परस्मैपदी) इति धातोः पचाद्यच्। 'चितः' (अष्टा० ६.१.१६३) इत्यन्तोदात्तो 'देव' प्रातिपदिकः। ततः चतुर्थीबहुवचने, 'बहुवचने झल्येत्' (अष्टा० ७.३.१०३) इत्येत्वे, विभक्त्यनुदात्तत्वम्, 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः' (अष्टा० ८.४.६६) इति स्वरितत्वे –'देवेभ्यः'॥

१४. हूयते यत्तत् हविः। हु दानादानयोः आदाने प्रीणने च (जुहोत्यादिगणः, परस्मैपदी) इति धातोः 'अर्चिशुचिहुसृपिछादिछर्दिभ्य इसिः' (उणा० २.१०८) इति इसि-प्रत्ययः, 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (अष्टा० ७.३.८४) इति गुणादेशः, 'एचोऽयवायावः' (अष्टा० ६.१.७८) इत्यवादेशः, प्रत्यय-स्वरेणान्तोदात्तः, पुंसि प्रथमैकवचने– हविः॥

१५. शमु उपशमे (दिवादिगणः परस्मैपदी) इति धातोः, छन्दसि बाहुलकादात्मनेपदे लोटि मध्यमपुरुषैकवचने थास्-प्रत्ययः, 'दिवादिभ्यः श्यन्' (अष्टा० ३.१.६९) इति श्यन्-विकरणम्, 'बहुलं छन्दसि' (अष्टा० २.४.७३) इति श्यनो लुक्। 'तुरुस्तु तुरुस्तुशम्यमः सार्वधातुके' (अष्टा० ७.३.९५) इतीडागमः – शम् + ईट् + थास्। 'थासस्से' (अष्टा० ३.४.८०) इति थासः से आदेशः – शम् + ईट् + से। 'सवाभ्यां वामौ' (अष्टा० ३.४.९१) इति एकारस्य वादेशः, – शमी + स्व। 'आदेशप्रत्यययोः' (अष्टा० ८.३.५९), इति षत्वम्, प्रत्यय-स्वरेणान्तोदात्तश्च– शमीष्व॥ संहितायां 'तिङ्ङतिङः' (अष्टा० ८.१.२८) इति सर्वानुदात्तत्वम् –'शमीष्व' ॥

१६. सुष्ठु शाम्यतीति सुशमि। 'सु' इत्युपसर्गः 'उपसर्गाश्चाभिवर्जम्' (फिट्० ४.१३) इत्याद्युदात्तः॥ शमु उपशमे (दिवादिगणः परस्मैपदी) इति धातोः 'शमित्यष्टाभ्यो घिनुण्'(अष्टा० ३.२.१४१) इति घिनुण्-प्रत्ययः, प्रत्यय-स्वरेणान्तोदात्तः– 'शमिन्' प्रातिपदिकः॥ उपपदसमासः, 'गतिकारकोपपदात् कृत्' (अष्टा० ६.२.१३९) इत्युत्तरपदप्रकृतिस्वरप्राप्तौ, 'परादिश्छन्दसि बहुलम्' (अष्टा० ६.२.१९९) इति बाहुलकादुत्तरपदाद्युदात्तत्वम्, नपुंसके द्वितीयैकवचने– सुशर्मि॥ अथवा यथा तु पण्डित-ब्रह्मदत्त-जिज्ञासुमहाभागः स्वविवरणभाष्ये 'सुशर्मि' इति पदस्य स्वरप्रक्रियायां निर्दिशति– "यद्वा – 'सर्वधातुभ्य इन्' (उणा० ४.११८) इतीन्-प्रत्ययः, नित्वाच्च 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' (अष्टा०

से हविष्कृत् है, उसे पुकारना, उसका स्वागत करना भक्त का स्वाभाविक आचरण है। समाज में भिन्न-भिन्न कार्यों के उत्तरदायित्व का निर्वाह करनेवाले ब्राह्मणादि चार वर्ण हैं। चारों का बौद्धिक स्तर, वैचारिक क्षमता, ज्ञान-ग्रहण की क्षमता भिन्न है। अपने-अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए मनुष्य किस प्रकार सांसारिक पदार्थों के प्रति अतिलोभ से बचकर अनासक्ति भाव से हवि अर्थात् यज्ञशेष की भाँति इनका उपभोग करे, उपर्युक्त चारों वर्णों को इसका उपदेश करनेवाले विद्वानों को – उनकी सत्संगति के लिए तथा राजाज्ञा से ऐसी सुव्यवस्था देनेवाले राजा को उसका आश्रय पाने के लिए यहाँ कामना की गई है और 'एहि, एहि – आओ, आओ' कहकर उनका स्वागत किया गया है।

७. महर्षि दयानन्द का भावार्थ– लोकहित की कामना से नित्यप्रति यज्ञ=अग्निहोत्र करनेवाला यजमान भी हविष्कृत् है और स्वागत करने योग्य है। महर्षि ने इस भाव को प्रस्तुत मन्त्र के भावार्थ में इस प्रकार अभिव्यक्त किया है– **"जब मनुष्य वेद आदि शास्त्रों के द्वारा यज्ञक्रिया और उसका फल जान के शुद्धि और उत्तमता के साथ यज्ञ को करते हैं, तब वह सुगन्धि आदि पदार्थों के होम द्वारा परमाणु अर्थात् अति सूक्ष्म होकर वायु और वृष्टि जल में विस्तृत हुआ सब पदार्थों को उत्तम कर के दिव्य सुखों को उत्पन्न करता है। जो मनुष्य सब प्राणियों के सुख के लिए पूर्वोक्त तीन प्रकार के यज्ञ को नित्य करता है, उस को सब मनुष्य "हे हविष्कृत् अर्थात् यज्ञ का विस्तार करनेवाले, यज्ञिय व्यवहार का आदर्श उपस्थित करनेवाले उत्तम मनुष्य ! आप आइए, आप पधारिए" ऐसा बार-बार कहकर ©ô· ¬æô^· ¬æôU ¤ú¥ô"**[२०]

६.१.१९७) इत्याद्युदात्तत्वम्, तदुत्तरस्य स्वरितत्वं च– 'शमि' प्रातिपदिकः॥ 'गतिकारकोपपदात् कृत्' (अष्टा० ६.२.१३९) इत्युत्तरपदप्रकृतिस्वरत्वेन 'श'उदात्तः.अनेन स्वर-संचारिणीकारोऽपि प्रत्युक्तः ॥"

१७. हूयते यत्तत् हविः। हु दानादानयोः आदाने प्रीणने च (जुहोत्यादिगणः, परस्मैपदी) इति धातोः 'अर्चिशुचिहुसृपिछादिछर्दिभ्य इसिः' (उणा० २.१०८) इति इसि-प्रत्ययः, 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (अष्टा० ७.३.८४) इति गुणादेशः, 'एचोऽयवायावः' (अष्टा० ६.१.७८) इत्यवादेशः, प्रत्यय-स्वरेणान्तोदात्तः, पुंसि प्रथमैकवचने– हविः॥ डुकृञ् करणे (तनादिगणः, उभयपदी) इति धातोः 'क्विप् च' (अष्टा० ३.२.७६) इति क्विप्, 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' (अष्टा० ६.१.७१) इति तुगागमः, धातुस्वरेणान्तोदात्तः – 'कृत्'प्रातिपदिकः॥ हविः करोतीति हविष्कृत्। उपपदसमासः। सम्बोधने प्रथमैकवचने सु-प्रत्ययः, 'सामन्त्रितम्, एकवचनं सम्बुद्धिः'(अष्टा० २.४८-४९), 'एङ्-ह्रस्वात् सम्बुद्धेः'(अष्टा० ६.१.६९) इति सुलोपः, पादादौ, आमन्त्रितसंज्ञकत्वात् 'आमन्त्रितस्य च'(अष्टा० ६.१.१९८) इत्याद्युदात्तः, तदुत्तरस्य स्वरितश्च–हविष्कृत्॥ अपादादौ तु 'आमन्त्रितस्य च' (अष्टा० ८.१.१९) इति सर्वानुदात्तत्व-प्राप्तिः, भिन्नवाक्यत्वादाष्टमिकेन प्राप्तस्य सर्वानुदात्तस्याभावः, तदभावे षाष्ठिकेन 'आमन्त्रितस्य च' (अष्टा० ६.१.१९८) इत्यनेनाद्युदात्तत्वम् – 'हविष्कृत्'॥

१८. 'प्रादयः' (अष्टा० १.४.५८), इति निपातसंज्ञा, 'निपाता आद्युदात्ताः' (फिट्० ४.१२) इत्याद्युदात्तत्वम्, यद्वा 'उपसर्गाश्चाभिवर्जम्' इत्यनेनाद्युदात्तत्वम्॥

१९. इण् गतौ (अदादिगणः परस्मैपदी, सकर्मकः, अनिट्) इति धातोः लोटि मध्यमपुरुषैकवचने सिप्-शप्-प्रत्ययौ, पित्त्वाच्चानुदात्तौ, 'अदिप्रभृतिभ्यः शपः' (अष्टा० २.४.७२) इति शपो लुक्, 'सेर्ह्यपिच्च' (अष्टा० ३.४.८७) इति सि-स्थाने हि-आदेशः, धातुस्वरेण च – इहि॥ संहितायां 'तिङ्ङतिङः' (अष्टा० ८.१.२८) इति सर्वानुदात्तत्वम् –'इहि'॥

२०. द्र० – "यदा मनुष्या वेदादिशास्त्रद्वारा यज्ञक्रियां फलं च विदित्वा सुसंस्कृतेन हविषा यज्ञं कुर्वन्ति तदा स सुगन्ध्यादिद्रव्यहोमद्वारा परमाणुमयो भूत्वा वायौ वृष्टिजले च विस्तृतः सन् सर्वान् पदार्थानुत्तमान् कुर्वन् दिव्यानि सुखानि सम्पादयति। यश्चैवं सर्वेषां प्राणिनां सुखाय पूर्वोक्तं त्रिविध यज्ञं नित्यं करोति तं सर्वे मनुष्या हविष्कृदेहि हविष्कृदेहीति सत्कुर्युः॥" –यजु० १.१५ पर महर्षि दयानन्द के भाष्य में संस्कृत भावार्थ॥

सोचिये कि - आर्यों की शान क्या निराली थी! (१)

प्रो. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

कुछ ही दिन पहले माननीय डॉ. वेदपाल जी ने मुझे चलभाष पर बताया कि महर्षि दयानन्द जी के व्यक्तित्व तथा आर्यसमाज की महिमा तथा गतिविधियों पर देश-विदेश के कुछ विद्वानों ने एक महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम में भाग लेते हुए अपने विचार व्यक्त किये। अधिकांश वक्ता आर्यसमाजी नहीं थे। सब वक्ताओं को यह तो मान्य था कि आर्यसमाज ने अतीत में बड़ी शान से, तप-त्याग, जोश व उत्साह से अपनी विचारधारा की धूम मचाकर एक इतिहास रचा। दु:ख कष्ट झेलते हुए गौरवपूर्ण बलिदान देकर अपने संगठन की प्रतिष्ठा को चार चाँद लगाये, परन्तु अब न तो वह जोश है और पहले जैसे अदम्य उत्साह से संगठन, धर्म प्रचार में सक्रिय हैं। संगठन निष्प्राण है।

मैं यदा कदा कहा करता हूं कि झलाई का जोड़-जाड़ का नाम संगठन नहीं होता। आओ भविष्य को संवारने के लिए इस गम्भीर समस्या पर विचार करें।

एक समय था कि पं. लेखराम जी के साहित्य पर मुसलमानों ने छह-सात केस विभिन्न न्यायालयों में अभियोग चला दिये। एक भी कोर्ट में पण्डित जी को बुलाया न गया। लाला लाजपत राय आपके वकील थे। सारा आर्यसमाज पण्डित जी की पीठ पर था। सारे आर्यजगत् में पण्डित जी की सेवाओं व प्रचार की दिन-रात चर्चा होती थी।

अब स्थिति यह है कि भारत सरकार ने ग्यारह हजार भारतीय साहित्यकारों का जीवन परिचय प्रकाशित किया तो उन तीन विशालकाय ग्रन्थों में दो-चार आर्य लेखकों का उल्लेख तक नहीं था। ऐसा तो नहीं कि आर्यसमाज में दस-बीस जाने माने विद्वान् न हों। यह कितनी चिन्ताजनक स्थिति है।

इस सम्बन्ध में एक घटना देकर आगे चलते हैं। मैंने तीन खण्डों की वह ग्रन्थमाला क्रय कर ली। उसे लेकर आर्यसमाज नया बांस दिल्ली की सीढ़ियों से ऊपर अपने कमरे में जा रहा था। ऊपर बैठे 'दयानन्द सन्देश' पत्रिका के कार्यालय के तीन-चार आर्ययुवकों ने कहा, ''ये क्या बड़े-बड़े ग्रन्थ ले आये?''

मैंने कहा, ''यह लो आप भी देख लो।'' उन बन्धुओं ने वे ग्रन्थ मुझ से लेकर देखने आरम्भ कर दिये। वे समझ गये कि भारत के सब भाषाओं के लेखकों का इसमें जीवन परिचय छपा है। उन्होंने अपने विद्वान् सम्पादक राजवीर जी का नाम खोजा तो वह न मिला। वे बड़े निराश हुए। फिर तीन-चार और विद्वानों के नाम खोजे, तो वे भी न मिले। अब तो उनकी निराशा की कोई सीमा ही न रही। उनमें से एक बोला, ''श्री भारतीय जी को कहना चाहिए, हमारे इतने प्रसिद्ध लेखकों का परिचय क्यों नहीं छपा?''

इस पर मैंने उन्हें कहा, ''आप भवानीलाल भारतीय का भी परिचय इसमें निकालें।'' उन्हें वह भी न मिला तो वे बोले, ''आप इतने मूल्यवान मोटे-मोटे ग्रन्थ क्यों क्रय कर लाये?'' मैंने कहा, ''इसमें पं. लेखराम जी के चरणों की धूलि है।''

उन्होंने पूछा, ''वह क्या?'' मैंने कहा, ''वह है राजेन्द्र 'जिज्ञासु', आप निकाल कर देख लें।'' उनको मेरा परिचय मिल गया। कोई प्रतिक्रिया उन्होंने न दी। मैं कोई लीडर जो नहीं था।''वे यह भ्रान्ति पाले हुए थे कि भारत के सब साहित्यकार तथा विश्व के लेखक भारतीय जी के दबाव में हैं। उनकी कृपा से ही आर्यलेखकों के नाम छप सकते हैं।''

मेरा लेख पढ़कर उपाध्याय जी फड़क उठे - मानव निर्माण कला के प्रेरक प्रसंग व घटनायें मैं चुन-चुन कर, खोज-खोज कर गत अस्सी वर्ष से सुनाता व लिखता चला आ रहा हूँ। मेरा एक कामरेड सहपाठी मुझे नास्तिक बनाने के लिये ईश्वर की सत्ता के खण्डन के लिए नये-नये कुतर्क खोज कर मेरी सोच बदलने का प्रयास करता रहा। लाला हरदयाल की पुस्तक Hints

for selfculture की युक्तियाँ उसका अन्तिम शस्त्र भी मुझ पर प्रयोग करके वह विफल रहा।

मैंने इसी पुस्तक के सब विचार लेकर २८-१०-१९५६ के उर्दू 'रिफार्मर' साप्ताहिक में ईश्वर की सत्ता पर एक लेख दिया। पूज्य पं. गंगाप्रसाद जी ने मेरा व लेख पढ़कर तत्काल मुझे एक कार्ड लिखा जिसका पहला वाक्य यह था, "मैं तुम्हारा लेख पढ़कर फड़क उठा।" निश्चय ही विश्व प्रसिद्ध दार्शनिक महापुरुष का यह वाक्य पढ़कर न जाने मैं कितना झूम उठा। गंगा ज्ञान सागर के दूसरे भाग में मैंने "मेरा वह लेख जिसे पढ़कर वे फड़क उठे" शीर्षक देकर मैंने अपना वह लेख फिर एक बार दिया। यह लेख इस दृष्टि से ऐतिहासिक बन गया कि एक उदीयमान युवा लेखक के इस लेख को पढ़कर विश्व प्रसिद्ध उस महान् विचारक ने हृदय को छू लेने वाले शब्दों में अपना आशीर्वाद दिया। वर्तमान के आर्य साहित्यकारों में केवल यही लेखक उनका यह प्रसाद पा सका। यह मनोभाव क्या उस महान् नेता की विलक्षणता नहीं थी? आश्चर्य का विषय तो यह है कि इस घटना व मेरे लेख को कई एक लेखकों ने पढ़ा, परन्तु छोटों को उठाकर उनका निर्माण करने वाली विभूतियाँ किसी का जीवन-निर्माण कैसे करती हैं? उपाध्याय जी के बड़प्पन व विलक्षणता पर आर्यसमाज में किसी ने आज तक कुछ नहीं लिखा। **तब और अब का यही तो भेद है।**

उपाध्याय जी ने अपवाद रूप में ही अपनी आठ-दस पुस्तकों पर ही बड़े-बड़े विद्वानों/लेखकों की सम्मतियाँ या भूमिकायें दी हैं। ऐसे आठ-दस ग्रन्थों में से एक ग्रन्थ 'इस्लाम के दीपक' पर आपने इस विनीत की सम्मति प्रकाशित करते हुए इस सेवक को सूचना तक न दी। मुझे तो उस ग्रन्थ के हिन्दी संस्करण पर अपनी सम्मति छपने का ज्ञान उपाध्याय जी के निधन के कई वर्ष पश्चात् पता चला। मेरे पास मूल उर्दू ग्रन्थ तो था ही। हिन्दी अनुवाद छपने की जानकारी तो थी, परन्तु इसे क्रय तब न किया गया।

सैंकड़ों ग्रन्थों के यशस्वी लेखक की मुझ पर ऐसी कृपा दृष्टि पर मैं क्या लिखूँ? कोई और लिखता तो आर्यसमाज की शोभा बढ़ती। कई एक महानुभावों ने प्रकाशक व सम्पादक बनकर यहाँ-वहाँ से उस ग्रन्थ को छपवा कर मेरी सम्मति हटाकर अपनी लीडर लीला करके दिखा दी है। यह इस युग के आर्यसमाजियों की महिमा है। जब देश-विदेश में आर्यसमाज का डंका बज रहा था। यह घटना उस सोच का प्रकाश करती है।

और नई सोच की एक घटना - अजय जी से मेरा पता प्राप्त करके एक विदेशी मुस्लिम स्कॉलर ने मुझ से पत्र लिखकर तीन आर्य प्रकाण्ड विद्वानों के जीवन चरित्र भिजवाने की मांग की। वे जीवन चरित्र ये चाहता था - १. पं. लेखराम जी का, २. स्वामी दर्शनानन्द जी का और ३. पं. रामचन्द्र जी देहलवी का।

मैं उसे क्या यह उत्तर देता कि पं. रामचन्द्र जी की तो पचास पृष्ठ की छोटी सी जीवनी आर्यसमाज में कभी न लिखी गई और न छपी। इससे तो आर्यसमाज का अपयश ही होता। स्वामी दर्शनानन्द जी व पं. लेखराम जी के दो सौ-दो सौ पृष्ठों के जीवन-चरित्र (मेरे द्वारा लिखित) समाप्ति पर थे। मैंने उस बन्धु को लिखा पं. रामचन्द्र जी देहलवी का बड़ा पठनीय जीवन चरित्र उनके जन्मदिन पर छपकर प्राप्य होगा। आप चार मास तक प्रतीक्षा कर लें।

पं. लेखराम जी व स्वामी दर्शनानन्द जी के जीवन चरित्र भी उसी के साथ भिजवा दिये जावेंगे। उसे यह पत्र भेजकर मैं दिन-रात देहलवी जी का जीवन लिखने में जुट गया। अजय जी से कहा, "आप इस पाण्डुलिपि को प्राप्त करके छपवा देंगे तो बड़ा यश पावेंगे।" आपने पूछा, "कितने पृष्ठों का ग्रन्थ है?" मैंने कहा, "लगभग चार सौ पृष्ठों का।"

अजय जी ने सोत्साह दृढ़ता से कहा, "प्रकाशित हो जावेगा।"

फिर कहा, "क्या स्वामी दर्शनानन्द जी की जीवनी भी छाप देंगे?" दोनों एक साथ छप जावेंगे तो श्री

शहरयार को समय सीमा में भेज देंगे। अजय जी ने स्वीकृति दे दी।

पं. लेखराम जी के जीवन चरित्र का एक-दो प्रेमियों के सहयोग से प्रकाशन करवाकर तीनों पुस्तकें समय सीमा के भीतर अजय जी ने उस बन्धु को पहुँचा दीं। तीनों के प्राक्कथन में यह लिखा गया कि इनके लेखन व प्रकाशन की मांग एक मुसलमान मित्र ने की थी सो उसी को इन तीनों के प्रकाशन का श्रेय प्राप्त है। क्या ऐसी कोई दूसरी घटना आर्यसमाज के इतिहास में मिलती है? इस विषय पर क्या किसी निब घिसाने वाले हमारे लेखक ने कुछ लिखा? यह सागर पार उस मुस्लिम मित्र को अजय जी ने पहुँचा कर एक नूतन इतिहास रच दिया। इस इतिहास पर वर्तमान के बनावटी लेखकों ने क्या लिखना था। अजय जी ने इतिहास प्रकाशन की योजना बताकर मुझे कार्य सौंप दिये। मैंने सार रूप में यह प्रेरक इतिहास उसमें जोड़ दिया।

एक पूरक घटना - पं. रामचन्द्र जी के कुल के एक नवयुवक को मध्यप्रदेश में एक लगनशील आर्य से पण्डित जी के उपरोक्त जीवन चरित्र की जानकारी मिली। उसने उससे पूछा, ''यह ग्रन्थ कहाँ से मिलेगा?'' उस सज्जन ने उसे मेरे से सम्पर्क करने को कहा। उसने मुझे लिखा, ''मैं अपने दादा का आप द्वारा लिखित जीवन चरित्र पढ़ना चाहता हूँ। कहाँ से मिलेगा?''

मैंने उसे कहा, ''अजय जी से मंगवा लें।'' वह भी धुन का धनी था। इस ग्रन्थ को लेने दिल्ली के लिए चल पड़ा। तब मैंने उसे कहा अजय जी को धन्यवाद देना न भूलना और यह भी बताना कि आप पूज्य देहलवी जी के पौत्र लगते हैं। वह ग्रन्थ ले गया। अजय जी से उसकी भेंट न हो सकी। मैंने जिस समय सीमा के भीतर यह अति कठिन कार्य कर दिया। इसका मूल्याङ्कन करने वाला समाज में आज कोई है ही नहीं। मेरे प्रेरणा स्रोत तो धर्मवीर पण्डित लेखराम जी, पं. लक्ष्मण जी तथा पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय थे सो असम्भव को सम्भव कर दिखाया। है कोई और लेखक आर्यसमाज में जो ढाई तीन मास में चार सौ पृष्ठों का खोजपूर्ण जीवन चरित्र लिख कर दिखा सके? यह सब पूर्वजों की प्रेरणा व हृदय की श्रद्धा का चमत्कार है।

और मैं चल पड़ा - कर्नाटक के महात्मा ब्रह्मदत्त जी ने मुझे एक प्रेरक संस्मरण सुनाया। आप धर्म प्रचार करते हुए उड़पी पहुँचे। वहाँ एक पुराने आर्यसमाजी का पता चला कि यह युवा संन्यासी कुछ समय स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी के आश्रम में अध्ययन करता रहा। स्वामी जी की चर्चा छेड़कर उन्हें यह मधुर संस्मरण सुनाया। मैं हैदराबाद सत्याग्रह से पहले आर्य महासम्मेलन शोलापुर पहुँचा। उसी में सत्याग्रह करने की आर्यों ने घोषणा कर दी। सारे प्रेस में आर्यसमाज के जोश व धर्मभाव की धूम मच गई।

मैं लौट कर उड़पी पहुँचा तो प्रेस में शोलापुर सम्मेलन की धूम पढ़कर क्षेत्र के लोग दूर-दूर से मुझसे सम्मेलन के समाचार पूछने के लिए आने लगे। वहाँ क्या-क्या देखा और सुना? सबका मुख्य प्रश्न यही होता था। तब मैंने उन सबको वहाँ का एक अद्‌भुत संस्मरण सुनाया। ''आर्यो के जोश, धर्मभाव, उत्साह, हृदय की तड़पन का वर्णन शब्दों में कौन कर सकता है? वहाँ बहुत संन्यासी, नेता और विद्वान् पधारे थे। एक भीमकाय संन्यासी जन-जन के आकर्षण का केन्द्र था। उससे उस महासम्मलेन की विशेष शोभा थी।''

लोग पूछते, ''वह संन्यासी महात्मा कौन था?'' उड़पी का यह आर्यपुरुष सबको बताता, ''यह संन्यासी महात्मा स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज थे। सबका यही कहना था कि ऐसा भीमकाय ब्रह्मचारी पुरुष तो कभी हमने देखा व सुना ही नहीं है।''

उस सज्जन का यह कहना था कि स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी जब दूर से आते दिखाई देते थे तो ऐसे लगता था कि पर्वत चलता हुआ आ रहा है। धर्मप्रेमी जनता उनके दर्शन करके स्वयं को धन्य-धन्य मान रही थी। वे आज भी जन-जन के लिए प्रेरणा स्रोत हैं। आँखें आज ऐसे तपोधन पूजनीय नेता को खोजती हैं।

क्रमशः वेद सदन, नई सूरज नगरी, अबोहर।

मोक्ष और उसकी प्राप्ति के साधन

पं. बालकृष्ण शर्मा

महर्षि दयानन्द की प्रथम जन्मशताब्दी फरवरी सन् १९२५ में मथुरा में मनाई गई थी। इस अवसर पर ''दयानन्द जन्म शताब्दी स्मारक ग्रन्थ'' प्रकाशित हुआ था। पण्डित बालकृष्ण शर्मा का यह महत्त्वपूर्ण लेख स्मारक ग्रन्थ से साभार पुन: प्रकाशित किया जा रहा है।

-सम्पादक

संसार में जितने व्याख्येय विषय हैं, उन सब में परोक्ष होने से मोक्ष अतीव सूक्ष्म है। मोक्ष शास्त्र अथवा ब्रह्मनिष्ठ मुक्त इन होनों को अथवा इनमें से एक की भी सहायता लिए बिना लिखना साहसमात्र होगा। मोक्षानन्द के विषय में लिखते हुए वेदान्त में लिखा है कि-

न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा,
स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते।।

समाधि से सब दोषों से रहित होकर मोक्ष का अधिकारी मनुष्य बनता है, उस समय उसके अन्त:करण में जो सुख होता है, उसका वर्णन वाणी से नहीं हो सकता किन्तु मोक्षाधिकारी मनुष्य का अन्त:करण ही उसका अनुभव कर सकता है। वेदान्त यह भी कह रहा है कि जिस ब्रह्म की प्राप्ति ही मोक्ष की प्राप्ति है उसका उपदेष्टा मिलना कठिन है, क्योंकि 'आश्चर्योऽस्य वक्ता'। उपनिषद् कहती है कि उस अचिन्त्य स्वरूप ब्रह्म का उपदेश करने वाला प्राप्त होना बड़ा आश्चर्य है। मोक्ष अथवा ब्रह्म की प्राप्ति यह विषय अतीन्द्रिय होने से केवल बुद्धिग्राह्य है। इसके जैसा गहन विषय और कोई नहीं, अपनी आज तक की आयु में प्राप्त हुआ। संसार का अनुभव और मोक्षशास्त्र या वेदान्त ग्रन्थों का अवलोकन, इन दोनों की सहायता से ऐसे गहन विषय पर लिखने का साहस किया है।

'मोक्ष और उसकी प्राप्ति के साधन' इस विषय पर लिखने से पूर्व प्रथम इस बात का विचार कर्त्तव्य है कि मोक्ष किस को कहते हैं और किस वस्तु से पृथक् हो जाने या छूट जाने से मोक्ष कहाता है। 'मोक्ष अवसाने' इस चुरादिगण के धातु से अधिकरण कारक में 'घञ्' प्रत्यय करने से 'मोक्ष' शब्द सिद्ध होता है।' मोक्षयन्ति समाप्नुवन्ति दु:खानि यस्मिन्निति मोक्ष:, 'जिसमें दु:ख समाप्त हो जाते हैं उसको 'मोक्ष' कहते हैं। मोक्ष, मुक्ति, अपवर्ग, नि:श्रेयस:, निर्वाण और कैवल्य यह सब मोक्ष के ही नाम हैं। उन सबों का अर्थ दु:ख से छूट कर आनन्द को प्राप्त होना या करना है। दूसरा विचारणीय विषय यह है कि जिस वस्तु से छूटने से मोक्ष कहाता है वह वस्तु, कौनसी है? इसका उत्तर है कि वह वस्तु प्रकृति अथवा प्रकृति जन्य संसार है। वेद में भी कहा है कि-

अन्धतन्मः प्रविशन्ति येऽसंभूतिमुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ सभत्याऊँ रताः।।

यजु. अ. ४०/९

जो कभी उत्पन्न न होने वाली प्रकृति अर्थात् इस संसार के उपादान कारण में रत हैं वे अज्ञान अन्धकार में गिरकर दु:ख भोगते हैं और जो संभूति अर्थात् इस कार्य जगत् में रत हैं, वे उनसे भी अधिक दु:ख सागर में डूबते हैं।

प्रकृति और प्रकृति अन्य संसार से ही नानाविध जन्ममरणादि दु:ख प्राप्त होते हैं। यह बात युक्ति और प्रमाण से निर्विवाद हो चुकी है। न्यायदर्शन में बारह प्रमेय गिनाए हैं, उनमें दु:ख भी है। दु:ख विषय में लिखते हुए न्यायदर्शन के भाष्यकार वात्स्यायनजी लिखते हैं-

दुःखमिति समाधिभावनमुपदिश्यते। समाहितो भावयति। भावयन्निर्विद्यते। निर्विण्णस्य वैराग्यम्। विरक्तस्यापवर्गः।। वात्स्यायनभाष्यम्।

दु:ख कहां से आता है इस बात का विचार मनुष्य को सावधान चित्त होकर करना चाहिये ऐसा कहा गया है। समाधान चित्त वाला ही मनुष्य दु:ख कहां से आता है इस बात का विचार करने लगता है। विचार करने वाले की जिससे दु:ख प्राप्त होता है, उस वस्तु से उदासीनता हो जाती है। उदासीन को ही उस वस्तु में वैराग्य अर्थात् प्रेम का अभाव हो जाता है और विरक्त पुरुष को अपवर्ग अर्थात् मोक्ष प्राप्त हो जाता है। संसार में छोटे से छोटा भी कार्य करना हो तो जो अधिकारी होगा वही उस काम को कर सकता है। तब मोक्ष प्राप्ति जैसे दुष्कर कार्य को बिना अधिकारी के दूसरा कौन कर सकता है? इसीलिए मोक्षशास्त्र पढ़कर मोक्ष प्राप्त करने के पूर्व मनुष्य को विवेक, वैराग्य, षट्सम्पत्ति और मुमुक्षुत्व इन चार साधनों से सम्पन्न बनकर अधिकारी बनना चाहिये। उपर्युक्त साधनों से जो सम्पन्न न हो वह मनुष्य मोक्ष का अधिकारी ही नहीं यह निश्चय समझिये।

जब विवेकी मनुष्य इस संसार की तरफ देखता है, तब उसे संसार में सर्वत्र दु:ख ही दु:ख प्रतीत होता है, सुख का कहीं लेश भी नहीं जान पड़ता। योग दर्शन में पतञ्जलिजी ने भी लिखा है कि-

परिणामतापसंस्कारदु:खैगुर्णवृत्तिविरोधाच्च
दु:खमेव सर्वं विवेकिन:।

योगदर्शने।।

परिणामादि दु:खों देखे और गुण वृत्तियों के विरोध से विवेकी मनुष्य को सब दु:ख ही संसार में दीखता है। ऐसे इस दु:खमय संसार का अनुभव करता हुआ एक विवेकी कहता है-

कदलीस्तम्भनि:सारे संसारे सारमार्गगाम्।
य: करोति स संमूढो जलबुद्बुदसंनिभे।।

जैसे कोई मनुष्य, इसमें कुछ सार निकलेगा इस इच्छा से केले के वृक्ष के बक्कल उधेड़ने लगे तो बक्कल ही बक्कल निकलते जाते है, उसको सार का कहीं पता नहीं लगता, वैसे ही जल फेन के समान इस नि:सार और अनित्य संसार में जो सार की खोज करता है उसको सार का लेश ही नहीं मिलता। इसलिए कवि स्पष्ट कहता है कि इस असार संसार में सार का अन्वेषण करने वाला मनुष्य मूढ़ है।

महर्षि वात्स्यायनजी ने संसार की व्याख्या की है कि 'इच्छाद्वेषदय: अविच्छेदेनवर्तमान: संसार:।' अर्थात् जिस में इच्छा-द्वेषादि सदा मनुष्य के पीछे लगे रहते हैं उसका नाम संसार है। इस संसार को किसी ने समुद्र की, किसी ने भयंकर नदी की, किसी ने सिंहव्याघादि हिंसक पशुओं से युक्त भयंकर अरण्य की अनेक उपमाएं दी हैं।

यश्च मूढतमो लोके यश्च बुद्धे: परंगत:।
द्वाविमौ सुखमेधेते क्लिश्यत्यन्तरितो जन:।।

महाभारते

जो मनुष्य अत्यन्त मूढ़ है और जो बुद्धि के पार गया हुआ विद्वान् है, ऐसे दोनों ही मनुष्य सुख बढ़ाते हैं। इन दोनों दशाओं के अन्दर रहने वाला मनुष्य सदा दु:खी देखा जाता है। जिनसे संसार का मोह छूट नहीं सकता वे ऐसा पाण्डित्य करते हैं कि अजी केवल मुक्ति के ही पीछे पड़े रहना यह मनुष्य की अनुदारता है संसार में रहने वाला परोपकार करे, इसी में उसका संसार सफल है, परन्तु संसार के स्वरूप को जान कर जिसको इससे पूर्ण वैराग्य हुआ है, उसके लिए यह पाण्डित्य निष्फल है। एक ही वस्तु बुद्धिभेद से दो प्रकार की हो जाती है। इसके लिए हम एक दृष्टान्त देते हैं-

बम्बई जैसे नगर में एक श्रीमान् ने दश लक्ष रुपये खर्च करके एक मकान अपने निवास के लिए बनवाया। उसमें नाना प्रकार की सुन्दर वस्तुएं रखी गई और आस-पास बड़ा ही मनोहर बगीचा भी बनवाया गया। एक दिन श्रीमान् सेठ जी का मित्र सेठ जी के पास आकर कहने लगा कि सेठ जी! इस मकान से तो समुद्र के तट पर म्युनिसिपैलिटी ने जो कुटियां बनाई है स्वास्थ्य के लिए वे अच्छी हैं। सेठ जी हंसकर मन में ही कहने लगे कि यह मेरा मित्र मालूम होता है कुछ पागल हो गया है। उन समय तो मित्र चला गया। फिर दूसरी बार वही मित्र सेठ जी को मिलने आया। आते ही उसने कहा कि सेठ

जी! आपके मकान की सीढ़ियों पर प्लेग से मरा हुआ एक चूहा पड़ा है। यह सुनते ही सेठ जी कहने लगे कि मित्र! उस दिन आपने कुटियाँ कही थीं वे कहां हैं? मैं सब परिवार सहित आज ही उनमें रहने के लिए जाना चाहता हूं।

यहां मकान रूप एक ही वस्तु विचार भेद से दो प्रकार की हो गई। जिस मकान से सेठ जी का अत्यन्त मोह था वही मनोहर मकान प्लेग दूषित जानकर उनको उससे क्षणभर में वैराग्य उत्पन्न हो गया और कुटियों से प्रेम हो गया। सेठ जी ने जान लिया कि अब यदि मैं इस मकान का मोह पकड़ कर इसी में पड़ा रहा तो मेरा अमूल्य मनुष्य जीवन नष्ट हुए बिना न रहेगा। बस, इस दृष्टान्त से विद्वान् पाठक समझ लेंगे कि संसार के स्वरूप को न जानने वाला उसमें जितना मोहित है उतना ही संसार के स्वरूप को ठीक जानने वाला उससे वैराग्यवान् है। किसी कवि ने पद्य के पाद में लिखा है कि 'संसारे रे मनुष्या वदत यदि सुखं स्वल्पमप्यस्ति किञ्चित्। अर्थात् हे मनुष्यो! यदि इस संसार में थोड़ा भी सुख हो तो मुझे कहो तब मैं जानूं। महाराष्ट्र भाषा का एक कवि तो यहां तक लिख गया है कि-

मूर्खांगाजी पर मूर्ख, जो संसारीं मानी सुख।
संसार दु:खा ये बढ़ें, दु:ख गणीच नाजो।।

अर्थात् मूर्खों में भी महामूर्ख वह है जो संसार में सुख मानता है और जो महान् दु:खमय संसार को दु:ख नहीं गिनता। जब विवेकी मनुष्य इस प्रकार अपने विवेक से संसार को दु:खमय समझ लेता है, तब उसको इस संसार से वैराग्य उत्पन्न होता है। इसके अनन्तर उक्त विवेकी मनुष्य में षट्सम्पत्ति अर्थात् शमदमादि गुण आते हैं और इसके अनन्तर उसमें मुमुक्षुत्व अर्थात् संसार से छूटने की इच्छा उत्पन्न होती है। इस प्रकार विवेक, वैराग्य, षट्सम्पत्ति और मुमुक्षुत्व इन साधन चतुष्टय से युक्त हुआ विद्वान् इस संसार से पीठ फेर कर ऐसा भागता है, जैसा कोई मनुष्य सामने मुख फाड़े हुए सिंह को देख भयभीत होकर भागता है। ऐसी दशा जिस मनुष्य की होती है वही सच्चा मुमुक्षु है। ऐसे मनुष्य संसार में बहुत ही बिरले होते हैं।

यहां तक संसार से छूटने का ही नाम मोक्ष है और उसकी प्राप्ति का अधिकारी कौन हो सकता है यह संक्षेप से लिख दिया। अब उस मोक्ष की प्राप्ति के साधन क्या हैं इस बात का विचार कर्त्तव्य है। न्यायदर्शन में प्रमाण प्रेमयादि सोलह पदार्थों के तत्त्वज्ञान से मोक्ष कहा, वैशेषिक में '**यतोऽभ्युदयनि:श्रेयस सिद्धि: स धर्म:**' अर्थात् जिससे अभ्युदय और नि:श्रेयस सिद्ध हो वह धर्म है अर्थात् धर्म को मोक्ष का साधन कहा, सांख्य में 'ज्ञानान्मुक्ति:' अर्थात् मुक्ति का साधन ज्ञान कहा एवं प्राचीन ऋषियों ने साक्ष्य मोक्ष को प्राप्त करने में अनेक साधन दिखाए हैं। उन साधनों का मोक्ष सिद्धि के साथ क्या सम्बन्ध है, यह वर्णन करने में यह निबन्ध बहुत बढ़ जायेगा, इसलिए यहां उनका विचार न करके मोक्ष प्राप्ति में प्रधान साधन क्या है, इसका ही इम विचार करेंगे। यजुर्वेद में लिखा है कि-

तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्य: पन्था
विद्यतेऽयनाय।।

- यजु. अ. ३१

जिस आत्मा का वर्णन सहस्रशीर्षादि मन्त्रों से कर आए हैं उसको ही जान कर मनुष्य जन्ममरणादि दु:खों का अतिक्रमण कर सकता है। मरणादि दु:खों से छूटने का और कोई मार्ग नहीं है। यहाँ मृत्यु सब दु:खों का उपलक्षण है। उपनिषदों में भी लिखा है कि-

ब्रह्मविदाप्नोति परम्। तैत्तिरीयोप.

निचाय्य तं मृत्युमुखात्प्रमुच्यते।
य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति।

कठोपनिषदि

ब्रह्म को जानने वाला ही परमपद मोक्ष सुख को प्राप्त कर सकता है। परमात्मा को जानकर मनुष्य मृत्यु के मुख से छूट सकता है। जो ईश्वर को जानते हैं वे अमृत हो जाते हैं। यहां यह शंका होती है कि क्या ईश्वर का तत्त्वत: ज्ञान होना ही मोक्ष प्राप्ति है? अथवा ईश्वर

का तत्त्वत: ज्ञान मोक्ष प्राप्ति में साधन है? इसका समाधान यह है कि ईश्वर का तत्त्वत: ज्ञान ही ईश्वर की प्राप्ति है और ईश्वर की प्राप्ति ही मोक्ष की प्राप्ति है। जैसा व्यवहार में भी कहते हैं कि प्रतिष्ठा से ही धन मिलता है और धन से ही प्रतिष्ठा मिलती है। ऐसे दोनों ही प्रकार नीतिकारों ने माने हैं और दोनों ही सत्य हैं।

ऊपर के कथन से यह सिद्ध हुआ कि ईश्वर का तत्त्वत: ज्ञान या प्राप्ति ही मोक्ष की प्राप्ति है। ईश्वर की प्राप्ति ही मोक्ष प्राप्ति है तो ईश्वर को प्राप्त करना ही मोक्ष प्राप्ति का साधन हम यहाँ समझ लें। ईश्वर की प्राप्ति कैसे हो, इसी का हमें यहां विचार करना चाहिये। संसार में यह नियम देखने में आता है कि जिस वस्तु को मनुष्य को प्राप्ति करनी हो उसके लिए चार बातें अपेक्षित हैं। १. प्राप्य वस्तु के स्वरूप का ज्ञान, २. वह वस्तु कहां मिलती है, उसका स्थान, ३. उस वस्तु की प्राप्ति के लिए धनादि साधन और ४. उसके लिए पुरुषार्थ। उक्त चारों बातों में से यदि एक भी न्यून हो तो मनुष्य अपनी अभीष्ट वस्तु को प्राप्त नहीं कर सकता। इसके लिए हम एक व्यवहार का दृष्टान्त लें। किसी मनुष्य को बेर प्राप्त करने हैं। बेरों को प्राप्ति में प्रथम बेरों का स्वरूप मालूम होना चाहिये कि बेर कैसे होते हैं। दूसरी बात यह कि वे बेर कहां मिलते हैं; तीसरी बात यह कि बेरों के खरीदने में धन की आवश्यकता है और चौथी बात वह कि जहां बेर मिलते हैं यहां तक जाने का पुरुषार्थ करना चाहिये। यदि उक्त चारों बातों में से एक भी न्यून हो तो बेरों की प्राप्ति नहीं हो सकती। जिस मनुष्य को बेरों के स्वरूप का ज्ञान ही नहीं कि वे कैसे होते हैं तो बेर के बदले दूसरी वस्तु ले आवेगा। बेरों का ज्ञान है, परन्तु वे कहां मिलते हैं यह मालूम न हो तो भी उसको बेर नहीं मिल सकते। बेरों के स्वरूप का ज्ञान है और वे कहां मिलते हैं यह भी मालूम है परन्तु धन पास नहीं है तो भी बेरों की प्राप्ति नहीं हो सकती। बेरों के स्वरूप का ज्ञान है, बेरों के स्थान का ज्ञान है और ख़रीदने के लिए धन भी पास है, किन्तु खरीद कर लाने का पुरुषार्थ नहीं तो भी बेर नहीं मिल सकते। उपर्युक्त चारों बातें अनुकूल होने पर ही अभीष्ट बेरों की प्राति हो सकती है अन्यथा नहीं।

उक्त दृष्टान्त को हम ईश्वर प्राप्ति रूप दृष्टान्त में पढ़ायें। जिस परमात्मा की प्राप्ति करके हम मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं, प्रथम हमें उस परमात्मा के स्वरूप का ज्ञान होना चाहिये। परन्तु संसार में आज ईश्वर के स्वरूप के विषय में जनता के विचित्र विचार देखे जायें तो प्राचीन वेदान्तों को देखने वाले मनुष्य का अन्त:करण शोक से पर्याकुल हुए बिना न रहेगा। मुक्ति की भी ऐसी दुर्दशा अन्ध परम्परा में गिरी हुई मूढ़ जनता ने की है कि उसकी कोई कीमत ही न रही। जगन्नाथ के दर्शन करने से मुक्ति, हरिद्वार में दर्शन तथा स्नान करने से मुक्ति, काशी में गंगा स्नान करने से मुक्ति, द्वारका में दर्शन करने से मुक्ति, एकादशी का उपवास करने से मुक्ति, भगवद्‌गीता के श्रवण मात्र से मुक्ति। हम कहां तक कहें, हर गंगे! हर नर्मदे। ऐसा सैंकड़ों योजन दूर रह कर भी कोई मनुष्य कहे उसे मुक्ति! बाज़ार की कोथमीर का भी कुछ मूल्य है, परन्तु वर्तमान समय में मुक्ति मट्‌टी के मोल बिक रही है। मनुष्य को मुक्ति शीघ्र देने के लिए ख्रिस्तानुयायियों की मुक्ति फौज तैयार है। इस समय ईश्वर वा मोक्ष की प्राप्ति करने वाले जितने ग्रन्थ वा महात्मा हो गये हैं, वे राम तथा कृष्ण के आगे न जा सके। भागवतकार राधा और कृष्ण को ईश्वर और ईश्वरी बनाने में तन्मय हो रहा है, उत्तर हिंदुस्थान में कबीर, तुलसीदास, सुरदास आदि, गुजरात काठियावाड़ में नरसी मेहता आदि, मेवाड़ में मीरांबाई आदि, महाराष्ट्र में तुकाराम, रामदास, नामदेव आदि। अन्ध जनता ने इनके पीछे काल्पनिक कथाएँ जोड़ कर उक्त महात्माओं का माहात्म्य बढ़ाने में ज़रा भी कसर न रखी। कबीर फूलों को टोकरी से उत्पन्न हुए, मीरांबाई विष का प्याला पीकर भी न मरी, नरसी मेहता की लिखी हुई हुंडी ईश्वर ने सिकार दी, तुकाराम अपने पाँच भौतिक शरीर सहित विमान में बैठ कर बैकुण्ठ को गये, नामदेव ने हठ से ईश्वर को दूध का प्याला पिलाया, इत्यादि। जिन महात्माओं

के ज्ञान में वेदान्त प्रतिपादित अचिन्त्य परमात्मा का ख्याल भी नहीं आया, वे ईश्वर के सच्चे भक्त हो गये और उन्होंने मोक्ष प्राप्त कर लिया, यह कथन बेचारी अन्धजनता को और भी अन्धेरे में ढकेलता ही है। 'उलटा चोर कोतवाल को डांटे' के समान ही हुआ। भागवतकार ने तथा उक्त महात्माओं ने अज्ञानी जनता का उद्धार करने के लिए राम-कृष्णादि की गरिमा वर्णन करके बड़ा हो अभूतपूर्व भक्ति मार्ग निकाला, ऐसी उलटी यत्र तत्र प्रशंसा हो रही है। जिस सच्चिदानन्द स्वरूप ईश्वर की प्राप्ति योग, वेदान्त आदि ग्रन्थों में यमनियमादि अष्टांग से लिखी है, जिस अचिन्त्य परमात्मा को ध्यान में लाने के लिए विविक्त स्थानों में बैठकर विचार करने का उपदेश है, उन ग्रन्थों का अनादर करके बाललीला के समान जो भक्ति मार्ग निकाला है, उससे संसार सच्चे पारमार्थिक मार्ग से इतना दूर चला गया है कि अब उसको वहां से लौटाकर सच्चे मार्ग पर लाना बड़ा कठिन कर्म मालूम होता है।

उक्त कबीर आदि महात्माओं ने संसार के उपकार के लिए कुछ नहीं किया, यह कहने के लिए हम तैयार नहीं। हम तो कहेंगे उक्त महात्मा भाषा के अच्छे कवि हो गये और उन्होंने अपने काव्यों में प्रसंगानुसार व्यवहार, सदाचार और वैराग्य की ऐसी परिणामकारक बातें लिखी हैं जिनके लिए संसार उनका ऋणी है, परन्तु वे थे कुछ और संसार ने उनको मान लिया कुछ और, यही संसार की बड़ी भूल हुई है।

उक्त भूल प्रजा में अभीतक बराबर चल रही है उसमें त्रुटि आती नहीं दीखती। वर्ष डेढ़ वर्ष व्यतीत हुआ होगा महाराष्ट्र भाषा में निकलने वाले 'लोकमान्य' दैनिक अखबार में महोदय तिलक ईश्वर के अवतार थे, यह सिद्ध करने के लिए कई दिनों तक लेखमाला छपती रही। नवम्बर १९२४ के एक 'यंग इंडिया' के अंक में महात्मा गाँधीजी ने यह लिख कर कि लोग मुझे ईश्वरावतार मानकर संसार में ढोंग फैला रहे हैं, अश, अनता का सख्त खण्डन किया है। गोंड जाति में म. गाँधी जी को ईश्वर का अवतार मानने वाला एक नया पन्थ निकला है। यह लोग सप्ताह में एक गांधी दिन मनाते हैं। उस दिन सब लोग मिलकर घूमते हैं। अन्य लोग मिन्नतें मानते हैं और वे उनकी पूरी होती हैं, ऐसी-ऐसी बातें चल रही हैं। म. गाँधी जी ने इसका यंग इंडिया में निषेध भी किया है तो भी यह बात उक्त जनता के अन्तःकरण से नहीं निकलती। अज्ञान मनुष्य को क्या-क्या नाच नचायेगा इसका पार नहीं। सांप्रत ईश्वर के स्वरूप विषय में संस्कृत के बड़े-बड़े पण्डित, इंगलिश भाषा के बड़े-बड़े ग्रेज्युएट और पोलिटिकल विषय में बाल की खाल निकालने वाले बड़े-बड़े देशभक्त भी ईश्वर विषय में अज्ञानी बनकर उसी प्रवाह में बह रहे हैं, जिस प्रवाह में निरक्षर अज्ञ जनता बह रही है। इस अन्धपरस्परा के विषय में सांख्य में एक सूत्र है और उस पर विज्ञानभिक्षु ने जो भाष्य किया है उसको प्रासंगिक समझकर हम यहां लिखे देते हैं-

इतरथान्धपरम्परा।। सांख्यदर्शनम्

भा. इतरथान्धपरस्परापत्तिरित्यर्थः। सामध्येण आत्मतत्त्व मज्ञात्वा चेदुपदिशेत् कस्मिश्चिदंशे स्वभ्रमेण शिष्यमपि भ्रान्तीकुर्यात् सोप्यन्यं सोप्यन्यमित्यन्धपरम्परा।

विज्ञानभिक्षु

जब सच्चे उपदेशक संसार में नहीं होते तब अन्धपरम्परा चलती है। पूर्णतया परमात्मतत्त्व को जाने बिना यदि कोई उपदेश करे तो किसी अंश में उसको रहे हुए भ्रम से वह अपने शिष्य को भी भ्रान्त करेगा। यह भ्रान्त शिष्य अपने शिष्य को और वह अन्य शिष्य को उपदेश करेगा। इसी प्रकार संसार में अन्धपरम्परा चलती है।

जब देशकालादि से अनवच्छिन्न परमात्मा एक देशी शरीरधारी हो ही नहीं सकता, ऐसा वेदान्त शास्त्र पुकार-पुकार कर कह रहा है, तब रामकृष्णादि ईश्वर कैसे हो सकते हैं? जब रामकृष्णादि ईश्वर ही नहीं तब उनकी भक्ति से मोक्ष प्राप्ति कैसी? अर्थात् 'नष्टे मूले नैव शाखा न पत्रम्' के समान ही हुआ। ऊपर लिखे अनुसार जैसे

गोंड जाति म. गांधी जी को ईश्वरावतार ठहरा कर अपना जीवन व्यर्थ कर रही है, वैसे ही अन्धश्रद्धालु हिन्दू जनता ने अन्धपरम्परा से चलते हुए रामकृष्णादि को ईश्वरावतार मानकर ईश्वर की सच्ची भक्ति से अपने आपको वञ्चित कर दिया। जब मनुष्य देखते हुए भी ठोकरें खाकर गिरने लगे तब उनको कौन बचा सकता है? इसी प्रकार वाल्मीकि रामायण और महाभारत को पढ़-पढ़कर वा सुन-सुनकर जिन्होंने अपनी आयु व्यतीत कर दी, फिर भी वे राम और कृष्ण को ईश्वर के अवतार मानने की ही इठ पकड़ बैठें तो उनको कौन समझावे? नमूने के तौर पर रामायण तथा महाभारत के दो-चार दृष्टान्त हम विद्वान् पाठकों के सामने रख देते हैं, इतने ही से वे वास्तविक बात को समझ लेंगे।

पृथ्वी पर भ्रमण करते हुए महर्षि नारद वाल्मीकि ऋषि के आश्रम पर पहुंचे। वाल्मीकि ने अर्घ्य पाद्य से सत्कार करके नारद को आसन दिया । वाल्मीकि पूछने लगे कि महाराज! इस समय संसार में धर्मात्मा, विद्वान्, माता तथा पिता का भक्त, सुन्दर, बलवान्, और क्षमावान् पुरुष हो तो आप उसका वर्णन करें, मैं उस का जीवन चरित्र लिखना चाहता हूं। ऐसा पूछने पर महर्षि नारद ने कहा कि इस समय सर्वगुणसम्पन्न महाराज दशरथ का पुत्र राम है, उसका आप पवित्र जीवन चरित्र लिखें। यहां प्रश्नकर्ता ने भी गुणवान् पुरुष ही पूछा और उत्तरदाता ने भी गुणवान् राजपुत्र ही कहा। ईश्वरावतार होने की यहां कोई बात नहीं। अयोध्या काण्ड में जिस समय अपने वनवास का वृत्तान्त राम ने सुना तब उनको अत्यन्त आश्चर्य हुआ! परन्तु यह वृत्तान्त सुनते ही लक्ष्मण के क्रोध का ठिकाना न रहा। उनकी आंखों से आँसुओं की धारें बहने लगीं। लक्ष्मण को इतना दुःखी देखकर राम उनको समझाने लगे कि-

असंकल्पितमेवेह यदकस्मात्प्रवर्तते।
निवर्त्यारब्धमारम्भैर्ननुदैवस्यकम तत्।।
एतया तत्त्वया बुद्ध्या संस्तभ्यात्मानमात्मना।
व्याहतेप्यभिषेके मे परितापो न विद्यते।।

सर्ग. २२। श्लो. २४। २५

हे लक्ष्मण! अकस्मात् आई हुई यह आपत्ति हमारे (देव) कर्म का फल है। इस तत्त्व को तुम नहीं जानते इसलिए तुम इतना शोक कर रहे हो, मुझे इसका कुछ भी दुःख नहीं। रामचन्द्र वेदादि शास्त्रों के तत्त्वों को जानने वाले होने से वे प्रारब्ध कर्म को अमिट समझते थे। इसीलिए उन्होंने वनवास रूपी आकस्मिक आ गिरने वाले दुःख से न घबरा कर और अपने इस दुःख को अपने किसी कृतकर्म का फल समझ कर अपने आपको लक्ष्मण के समान मोहित न होने दिया! भला यहां ईश्वर होने की बात ही कहां? इसी प्रकार महाभारत के सभापर्व में जब महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में श्रीकृष्ण को अग्रपूजा देने की संमति भीष्म ने दी, तब अग्रपूजा के योग्य कृष्ण नहीं ऐसा तीव्र विवाद शिशुपाल ने उठाया। उस समय कृष्ण को ही आज की सभा में अग्रपूजा देना चाहिये इस विषय में भीष्म ने दो कारण दिखाए हैं।

वेदवेदांगविज्ञानं बलं चाप्यधिकं तथा।
नृणां लोके हि कोऽन्योऽस्ति विशिष्टः केशवादृते।।

सभापर्व. अ. २१। श्लो. १०

उक्त श्लोक के ऊपर के श्लोकों में भीष्म यह कह आए हैं कि कृष्ण हमारे संबन्धी हैं इसलिए मैंने इनको अग्रपूजा देने की संमति नहीं दी, किन्तु वेदादिका ज्ञान और पराक्रम इन दोनों गुणों से कृष्ण श्रेष्ठ होने के कारण दी है। इस बात का अनुमोदन देवर्षि नारद ने भी दिया और अन्त में उनकी अग्रपूजा सभा में हुई। यहां प्रश्न यह है कि जब कृष्ण साक्षात् ईश्वर थे तब महाज्ञानी कुरुवृद्ध पितामह भीष्म जैसे ने और देवर्षि नारद जैसे ने कृष्ण को अग्रपूजा देने में इतना बड़ा महत्त्व का निमित्त क्यों न दिखाया? यह प्रश्न न तो कोई श्रोता पूछता है और न कोई वक्ता उसका उत्तर देता है केवल अन्धाधुन्द चल रही है। इसी का नाम है सांख्य में कही हुई अन्धपरम्परा है। महाभारत में कुछ प्रकरण ऐसे भी हैं कि जिनमें कृष्ण के ईश्वर होने का भाव चमकता है, परन्तु उसका उत्तर भी महाभारत से ही मिल जाता है। **-क्रमशः**

ज्ञानसूक्त - १५

प्रवचनकर्त्ता- डॉ. धर्मवीर

लेखिका - सुयशा आर्या

प्रिय पाठक! परोपकारी पिछले कई वर्षों से आपकी सेवा में डॉ. धर्मवीर जी के वेद प्रवचनों को प्रकाशित कर रही है। इसी शृंखला में ऋग्वेद १०/७१ 'ज्ञानसूक्त' की व्याख्यान माला प्रकाशित की जा रही है। प्रवचनों को लेखबद्ध करने का कार्य डॉ. धर्मवीर की ज्येष्ठ पुत्री श्रीमती सुयशा कर रही हैं।

-सम्पादक

उत त्वं सरख्ये स्थिर पीतमाहुर्नैनम् हिनवन्त्यपि वाजिनेषु।
अधेन्वा चरति माययैष वाचं शुश्रुवाम् अफलामपुष्पाम्।।

हम इस वेद चर्चा के प्रसंग में ऋग्वेद के १०वें मण्डल के ७१वें सूक्त की चर्चा कर रहे हैं। इस सूक्त का ऋषि बृहस्पति है और इन मन्त्रों का देवता ज्ञान है। हमने इससे पहले ४-५ मन्त्रों की चर्चा की और आज एक और मन्त्र जो ज्ञान के सम्बन्ध में, उसके क्या हमारे लिए उपयोग और लाभ हैं, उसकी जिसमें चर्चा है उसको देखेंगे। मन्त्र है - उत त्वं सरख्ये स्थिर पीतमाहुर्नैनम् हिन्वन्त्यपि वाजिनेषु। अधेन्वा चरति माययैष वाचं शुश्रुवां अफलामपुष्पाम् - इसमें जो व्यक्ति समझदारी से किसी चीज को जानता सुनता है- इन दोनों में क्या अन्तर है, यह बात यहाँ पर कही गयी है यदि इसको लौकिक भाषा में कहें तो नीतिकारों ने एक सुन्दर श्लोक लिखा है- यथा खरश्चन्दन भारवाही भारस्य वेत्ता न तु चन्दनस्य। एवं हि शास्त्राणि बहूनि अधीत्य, अर्थेषु मूढ़ाः खरवद् वहन्ति। जो ज्ञान है यदि उसे केवल पुस्तक से रट लिया है सुन लिया है, कण्ठाग्र कर लिया है, तो वह बिल्कुल निरर्थक तो नहीं है किन्तु उसका जितना लाभ होना चाहिए उतना नहीं है। श्लोक कहता है कि यदि आप किसी गधे पर चन्दन का बोझा लाद दें तो उसे चन्दन के गुणों का स्मरण नहीं आता। चन्दन की उपयोगिता के बारे में विचार नहीं आता। उसे एक ही चीज का पता लगता है कि इसमें बोझा है, वजन है। इसलिए जो 'शास्त्रान् अधीत्य खरवद् वहन्ति' जो इन शास्त्रों को पढ़ते हैं लेकिन उनके अभिप्राय को, उनके अर्थों को, रहस्यों को समझते नहीं है, तो वे बोझा ढोने वाले के समान है। उन्हें शास्त्रों का बोझ तो लगेगा, लेकिन इसका जो लाभ है, वो नहीं मालूम पड़ेगा। इसमें एक और रोचक बात है कि जो ज्ञान है, उसकी एक कसौटी है कि जिसके पास ज्ञान आ जाता है वो स्थिर पीत हो जाता है अर्थात् अविचल हो जाता है। उसके मन, वाणी कर्म में किसी तरह का कोई सन्देह शेष नहीं रहता और ज्ञान से ही हमको कर्म करने की प्रेरणा प्राप्त होती है। इसके लिए एक सुन्दर प्रसंग आचार्य चाणक्य ने कौटिल्य अर्थशास्त्र में लिखा है कि सबसे महत्त्वपूर्ण जो विद्या है, वो है 'आन्वीक्षिकी' अर्थात् उचित और अनुचित को जानने की। हमें यह विद्या उसी तरह से काम देती है जैसे सूर्य का प्रकाश या दीपक। इसके लिए शास्त्र ने कहा है प्रदीपः सर्वविद्यानाम् उपायः सर्वकर्मणाम्, आश्रयः सर्वधर्माणाम् विद्यादेशे प्रकीर्तिता यह जो ज्ञान है, आन्वीक्षिकी विद्या है यह प्रदीपः सर्व विद्यानाम् जैसे एक दीपक से अनेक वस्तुएँ प्रकाशित हो जाती हैं, वैसे ही इस ज्ञान से, शास्त्र से, इस विद्या से, शेष विद्यायें भी आलोकित होने लगती है। जो कुछ हम करना चाहते हैं, वो कैसे सिद्ध हो, उसके लिए हम उपाय कहते हैं। यह

जो उपाय है, यह विद्या का परिणाम है अर्थात् एक पुस्तक पढ़ने वाले के पास, पढ़ने के बाद शब्द ज्ञान तो आ गया, लेकिन उपाय जो चीज है वह अनेक ज्ञानों के अनुभवों के, संग्रह के परिणामस्वरूप हमारे अन्दर जो ऊहा होती है, हमारे अन्दर जो सोच-सूझ होती है, वह इनसे पैदा होती है। उस ऊहा के बिना हमारे यहाँ काम नहीं चलता। अध्ययन करने से ऊहा करने की शक्ति बढ़ती है और बुद्धि के १८ जो गुण गिनाये हैं उनमें ऊहा बड़ा प्रमुख गुण है। इतना ही नहीं आचार्य पतंजलि कहते हैं कि व्याकरण क्यों पढ़ना चाहिए- वैसे तो उन्होंने उसके १८ प्रयोजन लिखे हैं, लेकिन जो मुख्य ५ प्रयोजन लिखे हैं वो है- रक्षा, ऊहा, आगम, लघु, असन्देहा प्रयोजन। रक्षा का अर्थ है हम वेदों की रक्षा करें इसलिए शास्त्रों को, व्याकरण को पढ़ने की आवश्यकता है। वहाँ दूसरा प्रयोजन है, ऊहा। अर्थात् किसी समस्या के समय में, किस सन्देह के समय में, किसी विकट परिस्थिति में जो उपाय को खोजना होता है वो ऊहा है। वो सूझ है, वो युक्ति है जिससे मनुष्य समस्या का समाधान कर लेता है। वह ऊहा इस हमारे ज्ञान से प्राप्त होती है, इस ज्ञान से उसका संग्रह होता है। हम बहुत सारी चीजों को जब पढ़ते हैं तो उसका विश्लेषण हम भले ही न करें लेकिन हमारा अन्तर्मन करता रहता है। यह किया हुआ विश्लेषण ही ऊहा के रूप में प्रकट होता है। तब हम कोई काम करते हैं तो उसका तत्काल उपाय कैसा होता है इसका एक उदाहरण- हमारे यहाँ निम्बार्क सम्प्रदाय है, उसके आचार्य को हम श्रीजी के नाम से जानते हैं। उनका जो एक प्रबुद्धशिष्य था उसकी ऊहा का एक उदाहरण उन्होंने दिया। कक्षा में पढ़ाते हुए गुरु जी ने उसे कहा- जाओ घर से आग लेकर आओ। वह हाथ हिलाता हुआ आग लेने चला गया। जाकर बोला- माता जी, गुरु जी ने आग मंगाई है। माता जी ने पूछा, आग लेकर किसमें जाएगा? क्या हाथ में लेकर जाएगा? तो तुरन्त छात्र बोला, हाँ हाथ में ले जाऊँगा। उसने, जो मिट्टी का ढेर पड़ा था, उसको अंजलि में भर लिया और बोला, माताजी इसके ऊपर रख दीजिये। उन्होंने रख दी और वह लेकर चला गया। उस समय पात्र ढूँढते, स्थान ढूँढते, वस्तु ढूँढते तो कोई दूसरा व्यक्ति ढूँढ सकता था। लेकिन तत्काल हमारे मन में उसका उपाय आ गया, यह हमारी ऊहा होती है और यह ऊहा विविध शास्त्र ज्ञान का परिणाम होती है। इसके लिए चाणक्य ने यह बात लिखी है- प्रदीपः सर्वविद्यानाम् उपायः सर्व कर्मणाम्। जब भी कोई काम करते हैं, तो का सिद्ध कैसे हो? तो उस सिद्धि के लिए हमारा मस्तिष्क उर्वर होता है। आश्रयः सर्वधर्माणाम्- जो भी हम श्रेष्ठ करना चाहते हैं उसका आधार, उसका आश्रय यह ज्ञान है। इस ज्ञान के सहारे से आप समस्त अच्छी बातों का पालन कर सकते हैं, उन पर आचरण कर सकते हैं। इसलिए हमें इसका अध्ययन करना चाहिए, इसका संग्रह करना चाहिए।

तो ज्ञान की जो विशेषता यहाँ बताई उसी प्रसंग में आचार्य चाणक्य ने एक बात और लिखी है, जिसे जानना अच्छा रहेगा। लिखा, आन्वीक्षिकी सामान्य रूप से न्याय विद्या को कहते हैं। लेकिन न्याय क्या? उसकी परिभाषा करते हुए वे लिखते हैं 'सांख्य योगो लोकायतनम् चेत्यान्वीक्षिकी।' सांख्य योग और लोकायत इसका जो ज्ञान है उसे हम आन्वीक्षिकी कहते हैं, न्याय विद्या कहते हैं। इनको पढ़ने से क्या लाभ होता? सामान्य रूप से लोग प्रश्न करते हैं कि हमारे शास्त्रों को पढ़ने से क्या लाभ होता है? इनसे कोई नौकरी तो मिलती नहीं, इसका कोई तो उपयोग नहीं? जब ऐसा प्रश्न हमारे सामने आता है तो आचार्य चाणक्य की यह पंक्ति बहुत उपयोगी होती है और इसके उद्देश्य को प्रकाशित करती है मुझे याद है, महाविद्यालय में पढ़ाते हुए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का एक शिष्ट मण्डल आया। उनमें कुछ ऐसे मूर्ख थे जिन्होंने अध्यापकों को इकट्ठा करके कहा कि भला व्याकरण पढ़ने का क्या फायदा, दर्शन-साहित्य से क्या लेना-देना, कुछ अंग्रेजी सीखो, कम्प्यूटर सीखो

कुछ कमाओ और हमें दो, कुछ खुद रखो। इतनी स्थूल बुद्धि वाले लोग इस देश के विश्वविद्यालयों को चलाते हैं। उनको यह पता नहीं है कि व्याकरण पढ़ने से, दर्शन पढ़ने से, साहित्य पढ़ने से, इतिहास पढ़ने से क्या होता है? शास्त्र पढ़ने से क्या होता है? हो सकता है इसको पढ़ने से धन न मिले, आजीविका एक बार को न मिले, लेकिन होता क्या है, यह उनको पता नहीं, क्योंकि उन्होंने कभी चाणक्य को पढ़ा ही नहीं। आचार्य चाणक्य लिखते हैं- सांख्यं योगो लोकायतनम् चेत्यान् वीक्षिकि, इसको पढ़ने से जो होगा, उसके लिए वे एक बहुत सुन्दर वाक्य लिखते हैं - व्यसने अभ्युदये च बुद्धिम् अवस्थापयति, प्रज्ञा वाक्य क्रिया वैशारद्यम् आपादयति। सबसे पहली बात कहते हैं कि व्यक्ति को निर्णय लेने की क्षमता आती है और जल्दी निर्णय लेने की क्षमता आती है। क्या यह किसी पैसे से आ सकती है? मतलब ज्ञानी होने से, व्यसने संस्कृत को कहते हैं, वहाँ दु:ख को भी कहते हैं, क्योंकि सारे व्यसन दु:ख का कारण है। अपने यहाँ अभ्युदय शब्द उन्नति के लिए आता है। सांसारिक ऐश्वर्य, सम्पन्नता के लिए आता है। धर्म की परिभाषा करते हुए दर्शनकार कहता है- यतो अभ्युदय नि:श्रेयस सिद्धि स: धर्म:। धर्म वह नहीं है जिससे एक तरफ की उन्नति हो और दूसरे तरफ की दरिद्रता हो, एक तरफ सुख एक तरफ दु:ख हो। इसको वह धर्म नहीं कहता। धर्म वह है जो हमारे अन्दर आत्मा भी प्रसन्न हो और हमारा शरीर भी सुविधा से प्रसन्नता का अनुभव करे। अभ्युदय भी हो और निश्रेयस भी हो। तो अभ्युदय शब्द का प्रयोग करते हुए चाणक्य कह रहे हैं कि मनुष्य 'अभ्युदये' सुख और 'व्यसने' दु:ख दोनों परिस्थितियों में स्वयं को सन्तुलित रख सके। यहाँ एक विचित्र बात है- हम यह तो सोचते हैं कि हमें दु:ख नहीं होना चाहिए, लेकिन ऐसा कोई व्यक्ति नहीं सोचता कि हमें सुख में भी बहुत प्रसन्न होने की आवश्यकता नहीं है। हमें लगता है कि यह स्वाभाविक बात है कि हमारे पास सम्पन्नता समृद्धि हो, उपलब्धि हो तो हम प्रसन्न हों। लेकिन यह स्वाभाविक नहीं है। आप जितना सुख के प्रति संवेदनशील होंगे, स्वाभाविक रूप से दु:ख के प्रति भी आप उतने संवेदनशील स्वयं ही हो जायेंगे। जो सुख में बहुत प्रसन्नता अनुभव करता है तो आप यह निश्चित मानिये कि दु:ख में उसे दु:ख का अुनभव भी उतनी ही तीव्रता से होगा। इसलिए शास्त्रकार कहते हैं, दु:ख में यदि अपने को बचाना है तो सुख की संवेदनाओं से भी अपने को रोकना होगा। सुख के साथ आप यदि निर्विकार रह सकते हैं तो आपके दु:ख में निर्विकार रहने की सम्भावना बढ़ जाती है। इसलिए आचार्य चाणक्य ने कहा- व्यसने अभ्युदये च बुद्धिम् अवस्थापयति। यह जो शास्त्र का अध्ययन है, वह दु:ख या प्रसन्नता होने पर, यह जो सत्संग है, प्रवचन है, स्वाध्याय है, उपासना है यह 'बुद्धिम् अवस्थापयति' बुद्धि को यथा स्थिति में रखता है, विचलित नहीं होने देता है। विचलन केवल एक परिस्थिति में होता है- जब आप उसका सामना नहीं कर सकते। इसलिए मन्त्र कहता है- 'उत त्वं सख्ये स्थिरपीतमाहुर्' मनुष्य को स्थिर होने के लिए ज्ञानवान् होना चाहिए।

आभूषण

सन्तानों को उत्तम विद्या, शिक्षा, गुण, कर्म और स्वभावरूप आभूषणों का धारण कराना माता, पिता, आचार्य और सम्बन्धियों का मुख्य कर्म है। सोने, चाँदी, माणिक, मोती, मूंगा आदि रत्नादि से युक्त आभूषणों के धारण कराने से मनुष्य का आत्मा सुभूषित कभी नहीं होता क्योंकि आभूषणों के धारण करने से केवल देहाभिमान, विषयासक्ति और चोर आदि का भय तथा मृत्यु का भी सम्भव है।

सत्यार्थ प्रकाश तृतीय समुल्लास

प्रतिक्रिया

आर्यसमाज के प्रारम्भिक काल से लेकर दो चार वर्ष पहले तक आर्यसमाज की सभी प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों व सम्पादकीय आदि पर सुधी पाठकों की ओर से स्वमतानुसार प्रतिक्रियाएं आती रहती थीं। अब लगता है या तो लेखकों-पाठकों का हृदयस्पर्शी सम्प्रेषण नहीं बन पा रहा है या पाठक वर्ग अपना मुखरित होने का स्वभाव खो चुका है। ये दोनों स्थिति संतोषजनक और उत्साहवर्धक नहीं कही जा सकतीं।

डॉ. वेदपाल जी ने पहले से चले आ रहे स्वभाव के अनुसार मुझे लेख भेजने का आदेश दिया और साथ ही परोपकारी के मई द्वितीय २०२४ का अंक भी वाट्स ऐप पर प्रेषित कर दिया। मैंने पढ़ा तो उनका सम्पादकीय लेख पढ़कर लगा कि उन्होंने मेरे हृदय की बात को अपनी शालीन भाषा शैली में प्रकट किया है। सच में आज आर्य समाज में हर सिद्धान्तवादी अजनबी बनकर रह गया है।

वो भी क्या समय था, जब आर्यसमाज के कर्णधार प्रतिभाशाली युवाओं को आर्यसमाज से जोड़ने के लिए बड़े लालायित और उत्साहित रहते थे। आज की दलबन्दी ने महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज के तप-त्याग और उनके दुर्लभ पुरुषार्थ को कालातीत बना दिया है। सार-संक्षेप में कहा जाये तो मेरा अपना अनुभव जन्य निष्कर्ष यह है कि पदाधिकार की पतित प्रतियोगिता ने आर्यसमाज की सबसे बड़ी हानि की है। महर्षि दयानन्द जी ने आर्यसमाज को लेकर जो आशंकाएं जताई थीं, वे सब जीवन्त होती दिख रही हैं।

आज का सच कहा जाए तो सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि आर्यसमाज के पदाधिकारी और उच्च स्तर के उपदेशक-प्रचारक पूर्णत: संवेदनाशून्य और नितान्त निष्ठुर होकर रह गए हैं। किसी को देश, धर्म और मानवीय सद्‌गुणों की रत्तीभर भी चिन्ता नहीं दिखती। कोई भाषण-व्याख्यान देकर धन कमाने में धन्यता मान बैठा है तो किसी ने प्रधान या मंत्री बनने को ही मुक्ति पथ मान रखा है। यह कोई कथन नहीं अनुभव है, इसे झुठलाया नहीं जा सकता।

वर्षों पूर्व मैं गुरुकुल कालवा के श्रावणी पर्व पर गया था। तब अपने प्रवचन में आचार्य बलदेव जी ने बड़ी वेदना के स्वर में उपस्थित आर्यों से महाराणा प्रताप के जीवन की एक घटना साझा करते हुए कहा था कि एक बार महाराणा प्रताप ने अपने सहयोगी सामन्तों से बड़ी पीड़ा भरे स्वर में कहा था- मेरे और मेरे दादा महाराणा सांगा के बीच में मेरा कायर पिता उदयसिंह नहीं आता तो मेवाड़ मेरे हाथ से यूं न निकल जाता।

इसके बाद आचार्य बलदेव जी ने कहा कि आर्यो! ऐसा न हो कि हमारी आनेवाली पीढ़ियां भी आक्रोश भरे स्वर में कहें कि हमारे और स्वामी श्रद्धानन्द, पण्डित लेखराम, स्वामी दर्शनानन्द आदि आर्यों के बीच कुछ कायर पीढ़ियां नहीं आतीं तो महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के तप-त्याग और उनके अमर बलिदान की आज यह स्थिति नहीं होती।

सुधी पाठक! सिध्दान्तजीवी आर्यो! तनिक अपने सौभाग्य और दुर्भाग्य दोनों का सच्चे हृदय से आकलन करके देखो। प्रथम नरतन का मिलना सबसे अधिक दुर्लभ। दूसरा वेदभूमि भारत में जन्म और भी दुर्लभ। आर्यसमाज के द्वारा परमात्मा की वेदवाणी की प्राप्ति उससे भी अधिक दुर्लभ। इतने सौभाग्य को हम अपने आलस्य-प्रमाद और अकर्मण्यता में पड़कर सबसे बड़े दुर्भाग्य में बदल लें तो हमसे अधिक हतभाग्य कोई नहीं हो सकता। लगता है जो वस्तु सरलता और सहजता से मिल जाती है, कम समझ के लोग उसका मूल्य नहीं समझते। अरे! जिसे पाकर लोक-परलोक दोनों सफल

करने थे, उसे पाकर दोनों को नष्ट कर लेना और क्या कहा जा सकता है?

आर्यो! थोड़ी विचारशीलता को जगाओ। थोड़ी बुद्धि से काम लेकर सोचो कि जो अकर्मण्यता/पदलिप्सा हमें सिद्धान्त विरोधी बना दे, वह पतन के द्वार खोलने वाली है।

डॉ. वेदपाल जी ने जिस वेदना को शालीनता के आवरण में सौम्यता से प्रकट किया है, उस वेदना को वेदना और पीड़ा जगाने वाली भाषा में कहने की बहुत आवश्यकता है। उनके लिए शालीनता ही उचित है क्योंकि महाभारत काल की भांति आज आर्य समाज में भी **''अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभ''** जैसी भयवर्धक स्थिति बन चुकी है। आओ! इस स्थिति का सामना करो, आज जब कहीं से भी सन्तोष और उत्साहवर्धक समाचार देखने सुनने को नहीं मिलता, तब केवल कुछ सिद्धान्त जीवी आर्यों से ही कुछ आशा की जा सकती है। ध्यान रखो आर्यसमाज का बोलबाला जब कभी भी होगा, तब सिद्धान्त जीवी आर्यों के द्वारा ही होगा। देखना यह है कि यह पुण्य वर्तमान पीढ़ी में से ही किन्हीं भाग्यशालियों को मिलेगा या अगली पीढ़ियों तक प्रतीक्षा करनी होगी। सत्य सनातन वैदिक धर्म का आर्यसमाज के माध्यम से बोलबाला तो होना ही है। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज का तप-तेज यूं नष्ट होने वाला तो नहीं, हां इसका लाभ कोई ऋषि दयानन्द का समानधर्मी ही उठा सकता है। आओ! उस दिशा में हमसे जो कुछ अच्छा बन सके, वह करने का सच्चा प्रयास करें।

-रामनिवास 'गुणग्राहक'

जब तक सबकी रक्षा करने वाला धार्मिक राजा वा आप्त विद्वान् न हो तब तक विद्या और मोक्ष के साधनों को निर्विघ्नता से पाने के योग्य कोई भी मनुष्य नहीं होता है और न मोक्ष सुख से अधिक कोई सुख है।

महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.५२

बस तो गया नगर में लेकिन...

- डॉ. रामवीर

बस तो गया नगर में लेकिन
मन अब भी लगता है गांव में,
ए. सी. से ज्यादा शीतलता
मिलती थी पेड़ों की छांव में।

नगरों की सारी सुविधाएं
कैसे और कहां से आतीं,
दूर कहीं धरती की छाती
में गड्ढे कर लाई जातीं।

चुरा लिये नगरों ने पहाड़ों
से पत्थर औ नदी से रेत,
भवन और सड़कें हैं जरूरी
उजड़ भले ही जाएं खेत।

ग्रामीणों के बारे शहरी
लोगों के हैं ऐसे विचार,
गरियाना हो अगर किसी को
तो उसको कहते हैं गंवार।

शोषण दोहन से मुटियाए
शहरी समझते खुद को सभ्य,
और देश के ग्राम्य जनों को
ये घोषित करते हैं असभ्य।

गांव अगर कुछ लेते हैं तो
उससे ज्यादा दे देते हैं,
स्वल्प साधनों के ही सहारे
जीवन यापन कर लेते हैं।

इधर शहर में स्थापित ए.सी.
जितनी ठंडक घर में लाते,
उससे दुगुनी गरमी फेंक कर
ग्लोबल वार्मिंग को ये बढाते।

बात शुरू की थी ए.सी. से
ए.सी. पर ही बात समाप्त,
समझदार मित्रों के वास्ते
एक उदाहरण ही पर्याप्त।

86, सैक्टर 46, फरीदाबाद, (हरि.) मो. 9911268186

ऋषि दयानन्द की प्रथम जन्म शताब्दी (मथुरा १९२५ ई.) का संक्षिप्त विवरण, सन्देश और सम्भावनाएँ

डॉ. ज्वलन्त कुमार शास्त्री

जून प्रथम २०२४ गतांक से आगे....

७. वैदिक सिद्धान्तों पर एक पुस्तक अंग्रेजी भाषा में तैयार करने के लिए निम्नांकित मनीषियों की एक उपसभा बनाई गई– १. प्रो. रामदेव जी (संयोजक) २. प्रिं. दीवानचन्द्र जी (कानपुर) ३. पं. घासीराम जी (मेरठ)। [खेद है कि यह पुस्तक तैयार नहीं हो सकी।]

८. मथुरा में दण्डी गुरुवर विरजाननद जी की कुटिया खरीद ली जाए तथा उसमें एक आश्रम खोला जाए।

[उस समय मथुरा वाला मकान प्राप्त नहीं हो सका। वह कुटिया कालान्तर में ले ली गई। आज उस पर तिमंजिला मकान बना है। कोई उल्लेखनीय गतिविधि वहाँ संचालित नहीं हो रही है।]

९. संस्कृत में 'सत्यार्थप्रकाश' का अनुवाद प्रकाशित किया जाए।

[संस्कृत में 'सत्यार्थप्रकाश' का अनुवाद प्रकाशित हो गया। बाद में स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती ने संस्कृत में अनूरित इस सत्यार्थप्रकाश का एक सुन्दर संस्करण प्रकाशित किया था। अनुवाद का कार्य गुरुकुल वृन्दावन के विद्वान् स्नातक विद्वद्वर पं. शंकरदेव पाठक ने किया था।]

१०. दण्डी गुरुवर विरजानन्द जी की अप्रकाशित पुस्तकों को प्राप्त कर प्रकाशित किया जाए।

[कोई उपयोगी पुस्तक नहीं मिल सकी। कुछेक पुस्तकें मिली थीं जो अनार्ष व्याकरण की थीं। ऐसी पुस्तकों का प्रकाशित करना उचित नहीं समझा गया। इन पुस्तकों को यमुना में प्रवाहित करने के लिए दण्डी जी ने कहा था, किन्तु उनके शिष्य पं. युगलकिशोर जी ने उन्हें रख लिया था।]

११. पच्चीस सहस्र मनुष्यों के ठहरने के लिए प्रबन्ध किया जाए। कार्यक्रम के लिए १५००० तथा ३००० की क्षमता वाले पृथक्-पृथक् दो पण्डाल बनाए जाएं।

दूसरी बुलेटिन (पत्रिका) १ अप्रैल १९२४ ई. को निकाली गई। जिसमें सात बिन्दु थे। मुख्य बिन्दु निम्नांकित थे–

१. शताब्दी महोत्सव की तिथि निर्धारित की गई– फाल्गुन कृष्ण सप्तमी से त्रयोदशी विक्रम संवत् तदनुसार १५ फरवरी से २१ फरवरी १९२५ ई.।

२. आर्यसमाजों के लिए ध्वज (झण्डा) का रंग गेरुआ और उसमें सूर्य के आकार के बीच 'ओ३म्' या 'ॐ' का चिह्न अंकित रहेगा यह निश्चय किया गया।

३. 'दयानन्दाब्द' संवत् के सम्बन्ध में यह निश्चय हुआ कि उसका आरम्भ ऋषि दयानन्द के जन्म संवत् (१८८१ वि.) से किया जाएगा। शताब्दी महोत्सव के पश्चात् उसकी गणना १०१ समझी जाए। साथ 'दयानन्दाब्द' में परिवर्धन नव विक्रमसंवत् के परिवर्तन के साथ किया जाए।

['शताब्दी सभा' का यह एक महत्त्वपूर्ण निश्चय था। क्योंकि इससे पूर्व 'दयानन्दाब्द' का प्रयोग ऋषि दयानन्द के निर्वाण के वर्ष से किया जाता था। इस सम्बन्ध में हम एक उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं। पं. श्री भगवद्दत्त के द्वारा सम्पादित 'ऋषि दयानन्द स्वरचित (लिखित वा कथित) जन्म चरित्र' की भूमिका के अन्त में "१५ चैत्र दयानन्दाब्द (निर्वाण) ३२ – भगवद्दत्त"

लिखा है तथा द्वितीय संस्करण के सम्पादकीय वा द्वितीय संस्करण का निवेदन के अन्त "२० आषाढ़, दयानन्दाब्द (निर्वाण) ३४ – भगवद्दत्त" लिखा गया। शताब्दी सभा के इस निश्चय के बाद दयानन्दाब्द वर्ष का निश्चय हो गया और तभी से आर्य-पत्रों में दयानन्दाब्द

की वर्ष-संख्या ऋषि के जन्म संवत् १८८१ वि. से गणना करके लिखी जाती है। अब सावधानी यह वर्त्तनी चाहिए कि प्रतिवर्ष फाल्गुण कृष्ण दशमी के दिन दयानन्दाब्द में परिवर्तन या १ वर्ष का परिवर्द्धन कर देना चाहिए। -लेखक]

तीसरी बुलेटिन (पत्रिका) ४ मई १९२४ ई. को जारी हुई। इस पत्रिका में महोत्सव का कार्यक्रम लिखा गया और उस पर सम्मति माँगी गई।

चौथी बुलेटिन (पत्रिका) ५ सितम्बर १९२४ ई. को जारी हुई। इस पत्रिका में कार्यक्रम स्थिर किया गया। महोत्सव का कार्यक्रम इस प्रकार बनाया गया-

१५ से २० फरवरी तक नित्य प्रति प्रातः काल सन्ध्या ६:०० बजे से ६:३० बजे तक। ६:३० बजे से ८:०० बजे तक बृहत् यज्ञ और सामगान। शताब्दी कैम्प में पाँच स्थानों पर यज्ञ। सभी स्थानों पर यज्ञ का कार्यक्रम एक जैसा। चार स्थानों पर क्रमशः चारों वेदों से यज्ञ। पांचवे स्थान पर यजुर्वेद से यज्ञ, इस प्रकार यजुर्वेद से यज्ञ दो स्थानों पर। पूर्ण यजुर्वेद से यज्ञ का तात्पर्य कुल मिलाकर यजुर्वेद पारायण अर्थात् सम्पूर्ण यजुर्वेद से यज्ञाहुतियाँ दी जाएं। यज्ञ के पश्चात् ८:०० बजे से ८:३० बजे तक वेदोपदेश। १५ से १७ फरवरी तक प्रातःकाल ८:३० बजे से १०:०० बजे तक छोटे मण्डप में आर्यपरिषद् में निम्नांकित विषयों पर विचार-

क. वर्णव्यवस्था का सिद्धान्त किस प्रकार कार्यरूप में परिणत किया जाए।

ख. वि-आर्य्य सभा, धर्मार्यसभा तथा राज्यार्य सभा की स्थापना इस समय किस प्रकार किया जाए?

ग. अछूतों का उपनयन आर्यसमाज में प्रवेश के समय या कुछ काल के पश्चात् किया जाए?

घ. आर्यसमाज का सभासद् बनने के लिए केवल १० नियमों का मानना आवश्यक है? या किन्हीं मन्तव्यों का? यदि हाँ तो किनका?

ङ. 'संस्कारविधि' में वर्णित संस्कारों की पद्धति के संशोधन पर विचार।

च. सदाचार के नियम की व्याख्या।

छ. हिन्दू या मुसलमान या अन्य कोई हो, आर्यसमाज में प्रवेश की विधि क्या होनी चाहिए?

आर्य परिषद् के निर्माण हेतु कुल २५० सदस्यों के चयन किस प्रकार हो? इस पर पूरा विचार, सुझाव वा निर्णय कर दिया गया है। यह छोटे मण्डप के कार्यक्रम का विवरण है।

बड़े मण्डप में ८:३० बजे से १०:०० बजे तक व्याख्यान और भजन होंगे। मध्याह्नोत्तर १:०० बजे से ३:०० बजे तक निम्नांकित ८ मतों के विद्वान् निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर रूप अपने-अपने निबन्ध पढ़ेंगे।

निम्नलिखित प्रश्न :

1. आत्मा और परमात्मा सम्बन्धी विचार।
2. सृष्टि उत्पत्ति।
3. ज्ञान का प्रारम्भ किस प्रकार हुआ।
4. सुख-दुःख के कारण।
5. मोक्ष और उसके साधन।

निम्नांकित मतों के विद्वान्

१. बौद्ध २. जैन ३. ईसाई ४. पारसी ५. इस्लाम ६. थ्योसोफिकल सोसाइटी ७. बहाई मत ८. वैदिक धर्म।

विशेष वक्तव्य- पाठकों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि इस 'जन्मशताब्दीवृत्तान्त' में उपरिलिखित पाँचों विषयों पर वैदिक धर्म के अनुसार पृष्ठ २४ से पृष्ठ ५६ तथा परिशिष्ट में भी ६ पृष्ठों में तक वैदिक सिद्धान्तों/मान्यताओं पर बहुत ही उत्तम कोटि के निबन्ध प्रस्तुत किये गये हैं। शताब्दी समारोह में इस धर्म सम्मेलन में जैन धर्म, बहाई धर्म तथा ईसाई धर्म के तीन मान्य विद्वान् उपस्थित हुए और अपने मत के अनुरूप अच्छे निबन्ध पढ़े और उसकी व्याख्या भी की।

यह धर्म सम्मेलन पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार १५ से १७ फरवरी तक तीनों दिन मध्याह्न १:०० बजे से ३:०० बजे तक हुआ। इसका पूरा-पूरा लाभ श्रोताओं ने

उठाया। पारसी, बौद्ध और इस्लाम धर्मों के प्रतिनिधियों से भी अपने-अपने धर्मों पर निबन्ध सुनाने की प्रार्थना की गई थी, परन्तु उनका कोई प्रतिनिधि समारोह में उपस्थित नहीं हुआ। शताब्दी समारोह में धर्म सम्मेलन का उद्देश्य क्या था? इस पर सम्मेलन के सभापति श्री गंगाप्रसाद जी एम.ए. ने अपने आरम्भिक भाषण में स्पष्ट कर दिया। सभापति का आरम्भिक भाषण भी इस शताब्दी वृत्तान्त पुस्तक में पृष्ठ ८४-८५ पर उद्धृत किया गया है। इस प्रकार का कार्यक्रम ऋषि की प्रथम जन्म शताब्दी के पश्चात् आज तक कभी नहीं हुआ। इन सारी सामग्रियों तथा समारोह में दिये गये आर्य संन्यासियों और मनीषी आर्यविद्वानों के भाषणों (जिनकी संक्षिप्त रिपोर्ट भी इस पुस्तक में प्रकाशित की गई हैं) को संकलित करने पर एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक का स्वरूप बन जाता है, जिसका प्रकाशन करना ऋषि की द्वितीय जन्मशताब्दी वर्ष में बहुत आवश्यक है। कोई प्रकाशक इसके लिए तैयार हो तो मैं यह कार्य सम्पादित कर दूँगा।

कुल ४० पृष्ठों (बड़े आकार के) में उपर्युक्त पाँच प्रश्नों के उत्तरस्वरूप निबन्ध जो वैदिक धर्म की मान्यताओं के आलोक में लिखे गये हैं व आर्यसमाज के साहित्येतिहास में एक धरोहर हैं, जिसको लिखने का कार्य विद्वद्वर्य श्री पं. चमूपति जी ने किया था।

१५ से १७ फरवरी तक तीनों दिन 'धार्मिक सम्मेलन' के बाद अपराह्न ३:०० बजे से ५:०० बजे तक निम्नांकित ८ विषयों पर आर्यविद्वान् निबन्ध पढ़ेंगे। यह कार्यक्रम छोटे मण्डप में होगा। इसी समय बड़े मण्डप में व्याख्यान और भजन हुआ करेंगें।

निबन्ध के विषय

१. त्रैतवाद २. ईश्वरीय ज्ञान वेद ३. वर्णाश्रम व्यवस्था ४. संस्कार फ़िलासफ़ी ५. षड्दर्शन में समन्वय ६. वैदिक सभ्यता में सदाचार का स्थान ७. वैदिक कर्मकाण्ड और पशुवध ८. महर्षि दयानन्द के वेदभाष्य की शैली।

१५ से १७ फरवरी तक प्रतिदिन रात्रि के ७:०० बजे से ९:०० बजे तक आर्यसम्मेलन होंगे, जिनमें भिन्न-भिन्न विषयों पर विचार किया जाएगा। इसमें यथासम्भव आर्यजनता को भी विचार प्रकट करने का अवसर मिलेगा।

रात्रि ९:०० बजे से १०:०० बजे तक १५ से १७ फरवरी तक प्रतिदिन एक व्याख्यान उपदेश रूप में हुआ करेगा।

१८ फरवरी से २० फरवरी तक का प्रोग्राम

प्रात: ६:०० से ६:३० तक सन्ध्या

प्रात: ६:३० से ८:०० तक बृहद् यज्ञ और सामगान

प्रात: ८:०० से ८:३० तक वेदोपदेश

प्रात: ८:३० से ९:३० तक व्याख्यान

१८ तथा १९ फरवरी को ९:३० बजे से १०:३० तक उन महानुभावों का परिचय आर्यजनता से कराया जाएगा, जिन्होंने ऋषि दयानन्द का दर्शन और उनके सत्संग से लाभ उठाने का सौभाग्य प्राप्त किया है।

२० फरवरी को पूर्वाह्न ९:३० बजे से १०:३० बजे तक 'आर्य परिषद्' की अन्तिम बैठक होगी।

मध्याह्नोतर काल में १:०० बजे से ५:०० बजे तक शारीरिक और मानसिक बल प्रदर्शन व्यायाम और खेलादि के कार्यक्रम होंगे। पहलवानों की कुश्ती भी होगी, किन्तु कुश्ती में पेशेवर पहलवान सम्मिलित नहीं होंगे।

२१ फरवरी शिवरात्रि उत्सव दिवस का कार्यक्रम

६:०० बजे से ८:०० बजे तक सन्ध्या, बृहद् हवन, पूर्ण आहुति।

८:०० से ९:०० तक - वेदोपदेश

९:०० से ११:०० तक - व्रत ग्रहण, सम्मिलित प्रार्थना और सामगान।

मध्याह्न १:०० से ५:०० बजे तक देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तर में वेद प्रचार तथा पुस्तक प्रकाशनार्थ सार्वदेशिक सभा द्वारा धन की अपील। इसी समय आर्यपुरुषों द्वारा की गई कतिपय प्रतिज्ञाओं की घोषणा रात्रि में ८:०० से ११:०० बजे तक सामगान, संगीत और दीपमालिका होकर उत्सव समाप्त।

व्रतग्रहण - व्रतग्रहण का तात्पर्य है कि अपनी अवस्था का विचार करके अपनी त्रुटियों में से समस्त या कुछेक त्रुटियों को दूर करने का दृढ़ निश्चय कर लेना। जो भी स्त्री-पुरुष व्रत ग्रहण करेंगे उन्हें उससे पहली रात्रि में उपवास करना होगा।

प्रदर्शनी-शताब्दी महोत्सव में प्रदर्शनी भी आयोजित की गई थी। इनमें निम्नांकित वस्तुएँ प्रदर्शित की गई-

क. स्वामी दयानन्द के व्यवहृत वस्त्रादि लिखे पत्रादि और उनके चित्रादि

ख. वैदिक साहित्य की पुस्तकें (प्रकाशित और हस्तलिखित)

ग. आर्यकन्या पाठशाला, अनाथालय, गुरुकुल और डी.ए.वी. स्कूल और कॉलेज आदि सामाजिक संस्थाओं के विद्यार्थियों द्वारा बनाई गई वस्तुएँ तथा सुलेख आदि।

पाँचवी पत्रिका

पाँचवी पत्रिका २८ अक्टूबर १९२४ ई. को प्रकाशित हुई। इसमें दुकानों के प्रबन्ध के सम्बन्ध में हिदायतें और नियम प्रकाशित किये गये थे। खाद्य अथवा भोज्य सामग्री के विक्रयार्थ भी नियम निर्धारित किये गये थे। वैदिक साहित्य और आर्य साहित्य (विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित) के विक्रय हेतु दुकानों के विषय में नियम बनाये गये। हवन सामग्री विक्रयार्थ रखी गई थी। किसी भी दुकान में विदेशी घृतादि, वैदिक धर्म के विरुद्ध लिखित साहित्य, अश्लील सामग्री तथा किसी भी भाषा में लिखित नाविल (उपन्यास) और नाटकादि की पुस्तकों की बिक्री भी निषिद्ध रहेगी।

छठी पत्रिका

छठी पत्रिका ३० अक्टूबर १९२४ ई. को प्रकाशित की गई। इस पत्रिका में स्वयं सेवकों तथा स्वयं सेविकाओं के प्रबन्ध हेतु नियम निर्धारित किये गये थे। जिनमें उनकी आयु, वर्दी (वेशभूषा), सेवाभाव और उनके अधिकारियों के विषय में समुचित जानकारी उपलब्ध कराई गई थी।

सातवीं पत्रिका

सातवीं पत्रिका १६ नवम्बर १९२४ ई. को प्रकाशित की गई। पत्रिका में इस प्रश्न का उत्तर दिया गया था कि शताब्दी के बाद क्या होगा? शताब्दी सभा ने इस विषय पर गम्भीरता से विचार कर यह निश्चय किया है कि स्वामी जी ने परोपकारिणी सभा की स्थापना के समय जो अपना स्वीकार पत्र (वसीयतनामा) बनाया था, वही उद्देश्य आर्यसमाज, जनपद की प्रतिनिधि वा प्रान्तीय तथा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा का भी होगा। ऋषि की वसीयतनामे के अनुसार ही कार्य करना होगा। ऋषि की वसीयतनामे में से तीन उद्देश्य पूरे करने थे-

१. वेद-वेदादि शास्त्रों का प्रचार/अर्थात् उनकी व्याख्या करना-कराना, पढ़ना-पढ़ाना, सुनना-सुनाना और छापना-छपवाना।

२. वेदोक्त धर्म के उपदेश और शिक्षा हेतु उपदेशक मण्डली नियम कर देश-देशान्तर, द्वीप-द्वीपान्तर में भेजकर सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग कराना।

३. आर्यावर्त्तीय दीन और अनाथ मनुष्यों के रक्षण, पोषण और सुशिक्षा में उनका छोड़ा हुआ धन व्यय किया जाए।

[अब आर्यसमाजें तथा परोपकारिणी सभा को यह चिन्तन करना है कि इसमें कहीं भी इस बात का उल्लेख नहीं है कि न्यायालय या मुकदमों में लाखों रुपये खर्च किये जाएं।]

विद्या के कोष की रक्षा व वृद्धि राजा व प्रजा करें

वे ही धन्यवादार्ह और कृत-कृत्य हैं कि जो अपने सन्तानों को ब्रह्मचर्य, उत्तम शिक्षा और विद्या से शरीर और आत्मा के पूर्ण बल को बढ़ावें जिससे वे सन्तान मातृ, पितृ, पति, सास, श्वसुर, राजा, प्रजा, पड़ोसी, इष्ट मित्र और सन्तानादि से यथायोग्य धर्म से वर्त्तें। यही कोष अक्षय है, इसको जितना व्यय करे उतना ही बढ़ता जाये, इस कोष की रक्षा और वृद्धि करने वाला विशेष राजा और प्रजा भी है। (सत्यार्थ प्रकाश सम्मुलास ३)

परोपकारिणी सभा अजमेर के नवीन प्रकाशन रियायती मूल्यों पर

पुस्तक का नाम	पृ. सं.	वास्तविक मूल्य रुपये	छूट के साथ मूल्य रुपये
ऋग्वेद संहिता	९००	५००	४००
अथर्ववेद संहिता	५५०	४००	३००
ऋग्वेद भाष्य नवम भाग	४००	३००	२२५
पञ्चमहायज्ञ विधि	६२	२०	१५
वैदिक संध्या मीमांसा	१०७	४०	३०
महर्षि दयानन्द सरस्वती का पत्र-व्यवहार (दोनों भाग)	१३९२	८००	५००
महर्षि दयानन्द के हस्तलिखित-पत्र	३३६	२००	१००
कुल्लियाते आर्यमुसाफ़िर (दोनों भाग)	९३८	९५०	६००
डॉ. धर्मवीर का सम्पादकीय संकलन (तीन भाग)	८१४	५००	२५०

यजुर्वेद भाष्य (महर्षि दयानन्द सरस्वती) पृष्ठ संख्या- २१९७, चार भागों का मूल्य = १३००/-

डाक-व्यय सहित विशेष छूट पर उपलब्ध मूल्य = १०००/-

पुस्तकों हेतु सम्पर्क करें:-दूरभाष - 0145-2460120, चलभाष - 7878303382

VEDIC PUSTKALAYA
0510800A0198064
1342679A
0510800A0198064.mab@pnb

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर से क्रय की जाने वाली पुस्तकों की राशि ऑनलाइन जमा कराने हेतु

खाताधारक का नाम - वैदिक पुस्तकालय, अजमेर

(VEDIC PUSTKALAYA, AJMER)

बैंक का नाम - पंजाब नेशनल बैंक, कचहरी रोड, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-

0008000100067176

IFSC - PUNB0000800

UPI ID :

0510800A0198064.mab@pnb

आवश्यक सूचना

परोपकारी के सुधि पाठकों से निवेदन है कि कृपया अपना नाम व पते के साथ दूरभाष संख्या भी अंकित करावें ताकि परोपकारिणी सभा के आगामी कार्यक्रमों से सम्बन्धित सूचनाएँ आपको दूरभाष पर मैसेज के माध्यम से भेजी जा सकें।

परोपकारिणी सभा दूरभाष संख्या - ८८९०३१६९६१

संस्था की ओर से....

क्या आप प्रतिदिन अतिथि यज्ञ नहीं कर पाते? तो आइये, अतिथि यज्ञ के होता बनिये

वैदिक नित्यकर्मों में पञ्चमहायज्ञ अवश्य करणीय कर्म हैं। इन्हीं में से एक है- अतिथि यज्ञ। प्रत्येक गृहस्थ के लिए अतिथि यज्ञ प्रतिदिन करना अनिवार्य है, किन्तु आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं, फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय? इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और वह राशि एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल/आश्रम में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय। इस राशि को प्रदान कर सभा के माध्यम से अतिथि यज्ञ सम्पन्न कर सकते हैं।

सभा की योजना के अनुसार प्रतिवर्ष ५ हजार एक सौ रु. की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी होता सदस्यों में अंकित किया जाता है, ऐसे सज्जनों के नाम परोपकारी में प्रकाशित भी किये जाते हैं।

आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक/सभा के खाते में ऑनलाइन द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं।

आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि, जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि लगभग पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे, तो उन्हें उनके जन्मदिवस आदि पर परोपकारिणी सभा की ओर से दूरभाष द्वारा आशीर्वाद प्रदान किया जायेगा। यदि उस शुभ अवसर पर वे स्वयं उपस्थित होकर यजमान बनें तो यह सर्वोत्तम होगा।

अतिथि-यज्ञ के होताओं से अनुरोध

अपनी राशि भेजते समय **जन्मतिथि/वैवाहिक वर्षगाँठ आदि व दूरभाष संख्या** सूचित करना न भूलें। साथ ही यह भी अवश्य सूचित करा देवें कि पहले से भिजवा रहे हैं अथवा नया शुरू किया है।

दूरभाष - **8890316961**

परोपकारिणी सभा के प्रकल्पों में सहयोग करने हेतु बैंक विवरण

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी चौक, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715** **IFSC-SBIN0031588**

email : psabhaa@gmail.com **सूचना देने हेतु चलभाष - 8890316961**

दानदाताओं की सूची

अन्य प्रकल्पों में सहयोग

(०१ से ३० मार्च २०२४ तक)

१. श्री सतीश कुमार आर्य, मुजफ्फरनगर २. श्री विपिन कुमार, दिल्ली ३. श्री मनीष माहेश्वरी, किशनगढ़ ४. श्रीमती ममता माहेश्वरी, किशनगढ़ ५. श्री दिलीप सिंह डीडवाना, अजमेर ६. श्री कपिल, अजमेर ७. आचार्य सत्यव्रत, अजमेर ८. श्रीमती विजयलक्ष्मी चौधरी, जोधपुर ९. श्रीमती रमा सुभाषचन्द नवाल, अजमेर १०. श्री के. सी. शर्मा, अजमेर ११. श्रीमती रश्मि पारवानी, अजमेर १२. मै. कस्तूरबा गांधी बालिका आवासीय विद्यालय, नागौर १३. श्री वेदप्रकाश हिंडौन १४. श्री सौरभ कुमार सिंह, मुम्बई १५. स्वामी आशुतोष, अजमेर १६. श्रीमती तुलिका साहू, विलासपुर १७. मै. आर्यसमाज दयानन्द भवन, नागपुर १८. श्री सुरेश आनन्द, नई दिल्ली १९. श्री चन्द्रसेन हरिसिंघानी, अहमदाबाद २०. श्रीमती चन्द्रकान्ता टूटेजा, गुरुग्राम २१. श्री तिलकराज नागपाल, गुरुग्राम २२. श्री अनिल सचदेवा, गुरुग्राम २३. श्री धर्मदेव शशि नागपाल, गुरुग्राम २४. श्रीमती कान्ता चौधरी, गुरुग्राम २५. श्रीमती किरण देवी, जोधपुर २६. श्री जयसिंह गहलोत, जोधपुर २७. श्री राकेश, जोधपुर २८. श्रीमती हेमलता परासीया, मुम्बई २९. श्रीमती दीक्षा, मुम्बई ३०. श्रीमती भारती, मुम्बई ३१. श्री जावीर, मुम्बई ३२. श्रीमती उर्मिला, मुम्बई ३३. श्रीमती अंजना पटेल, मुम्बई ३४. श्रीमती अमीषा, मुम्बई ३५. श्रीमती जयाबेन पटेल, मुम्बई ३६. श्रीमती भावना, मुम्बई ३७. श्रीमती मन्जू, मुम्बई ३८. श्रीमती दीपिका, मुम्बई ३९. श्रीमती लता देवानी, मुम्बई ४०. श्रीमती शिल्पा कानपारा, मुम्बई ४१. श्रीमती वन्दना विज, मुम्बई ४२. श्रीमती तरुलता वेलानी, मुम्बई ४३. श्रीमती शारदा चौधरी, मुम्बई ४४. श्रीमती मयूरी भवानी, मुम्बई ४५. श्रीमती लीलावती नाकरानी, मुम्बई ४६. श्रीमती दमयन्ती, सेनघानी, मुम्बई ४७. श्रीमती उषा सिंह, मुम्बई ४८. श्रीमती मन्जु खण्डेलवाल, मुम्बई ४९. श्री कमलेश डूड, गुड़गाँव ५०. श्रीमती हेमलता पटेल, मुम्बई ५१. श्रीमती जया वेलानी, मुम्बई ५२. श्रीमती हर्षिता वेलानी, मुम्बई ५३. श्रीमती सुमना गुप्ता, मुम्बई ५४. श्री जयन्तीलाल पोकर, मुम्बई ५५. श्री विनोद वेलानी, मुम्बई ५६. श्री परेश पटेल, मुम्बई ५७. श्रीमती अरुणा बेन, मुम्बई ५८. मै. सुप्रीम सन्राइजर्स, गेगल, अजमेर ५९. स्वामी मुमुक्षानन्द, अजमेर ६०. डॉ. पुनीत चण्डक, अजमेर ६१. श्री गोविन्द पारीक, चापांनेरी ६२. श्रीमती दीपा, अजमेर ६३. शास्त्री केशवदेव आनन्द, अजमेर ६४. श्री दीपेश भार्गव, अजमेरे ६५. श्रीमती सूरज देवी सोमानी, अजमेर ६६. श्री मुकेश बंसल, अजमेर ६७. श्री वासुदेव आर्य, अजमेर ६८. श्रीमती शकुन्तला/नन्दिनी/समीरा, मोरीशस ६९. श्री सत्यनारायण सोनी, अजमेर ७०. श्री आदित्य मुनि, अजमेर ७१. श्री चन्द्रील सवासीया, अजमेर ७२. श्री मनीष माहेश्वरी, किशनगढ़ ७३. श्री महेन्द्र सिंह रावत, अजमेर ७४. मन्त्री आर्यसमाज, पंचकुला ७५. श्री पंकज बत्रा, सोनीपत ७६. श्री मनीष माहेश्वरी, किशनगढ़ ७७. श्री निलेश भाई, नवसारी।

आनन्द

जिस परमात्मा का यह 'ओ३म्' नाम है उसकी कृपा और अपने धर्मयुक्त पुरुषार्थ ये हमारे शरीर, मन और आत्मा का विविध दु:ख जो कि अपने [से] दूसरे से होता है, नष्ट हो जावे और हम लोग प्रीति से एक-दूसरे के साथ वर्त्त के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि से सफल होके सदैव स्वयं आनन्द में रहकर सब को आनन्द में रखें।

- संस्कार विधि

ऋषि उद्यान में आने वाले अतिथियों से निवेदन

परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित ऋषि उद्यान अजमेर में आने वाले सज्जनों के निवास-भोजन की व्यवस्था की जाती है। यह व्यवस्था ठीक से चल सके, इसके लिए आप अतिथियों के सहयोग की अपेक्षा है। जो भी अतिथि यहाँ कम या अधिक दिन रुकना चाहें तो आने के कम से कम दो दिन पूर्व परोपकारिणी सभा या ऋषि उद्यान के कार्यालय में सूचना देकर स्वीकृति अवश्य प्राप्त कर लेवें। सूचना में अपना नाम, पता, दूरभाष व साथ में आने वाले व्यक्तियों की संख्या, उनकी अवस्था (आयु), स्त्री या पुरुष सहित बता देवें। शौचालय की सुविधा भारतीय या पाश्चात्त्य अपेक्षित है? आपके यहाँ पहुँचने व प्रस्थान का दिन और समय तथा भोजन ग्रहण करेंगे या नहीं, यह भी स्पष्टता से बता देवें। आधार कार्ड की छाया प्रति साथ लाएं। यह सब लिखकर व्हाट्सएप पर भेज देंगे तो श्रेष्ठ है।

आपकी सूचनाओं के होने पर आपके लिए व्यवस्था समुचित की जा सकेगी। अचानक बिना सूचना के आने पर होने वाली असुविधा व कष्ट से आप बच सकेंगे। साथ ही इससे यहाँ के कार्यकर्त्ताओं को भी अनावश्यक असुविधा से बचाने में सहायता होगी। आशा है आपका समुचित सहयोग मिल सकेगा।

सूचना हेतु सम्पर्क-

ऋषि उद्यान कार्यालय	- ०१४५-२९४८६९८	**परोपकारिणी सभा कार्यालय**	- ०१४५-२४६०१६४
व्हाट्सएप	- ८८९०३१६९६१	**सम्पर्क का समय**	- ११ से ४ बजे तक

(किसी एक सम्पर्क पर सूचना देना पर्याप्त रहेगा) **निवेदक - मन्त्री**

दयानन्द धर्मार्थ चिकित्सालय

परोपकारिणी सभा द्वारा ऋषि उद्यान, अजमेर में कई वर्ष से संचालित आयुर्वैदिक चिकित्सालय का पुन: आरम्भ २६ अगस्त को किया गया है। यह चिकित्सालय सोमवार को छोड़ सप्ताह में ६ दिन मार्च से अक्टूबर सायं ५ से ७ बजे तक व नवंबर से फरवरी सायं ४ से ६ बजे तक दो घण्टे खुलेगा।

इसमें वरिष्ठ आयुर्वेद चिकित्सक की सेवा उपलब्ध है। चिकित्सा परामर्श व चिकित्सालय में उपलब्ध सभी औषधियाँ नि:शुल्क दी जाती हैं। यदि आप अपने धन को इस पुण्य कार्य में लगाना चाहते हैं, तो परोपकारिणी सभा के बैंक खाते में सहयोग भेज सकते हैं। सहयोग भेजकर ८८९०३१६९६१ पर सूचित अवश्य कर देवें। **- मन्त्री**

विद्या के कोष की रक्षा व वृद्धि राजा व प्रजा करें

वे ही धन्यवादार्ह और कृत-कृत्य हैं कि जो अपने सन्तानों को ब्रह्मचर्य, उत्तम शिक्षा और विद्या से शरीर और आत्मा के पूर्ण बल को बढ़ावें जिससे वे सन्तान मातृ, पितृ, पति, सास, श्वसुर, राजा, प्रजा, पड़ोसी, इष्ट मित्र और सन्तानादि से यथायोग्य धर्म से वर्त्तें। यही कोष अक्षय है, इसको जितना व्यय करे उतना ही बढ़ता जाये, इस कोष की रक्षा और वृद्धि करने वाला विशेष राजा और प्रजा भी है।

(सत्यार्थ प्रकाश सम्मुलास ३)

*** निवेदन ***

कीर्तिशेष आचार्य धर्मवीर जी ने अपने दानदाताओं के सहयोग से ऋषि उद्यान में निरन्तर चलने वाले ऋषि लंगर की व्यवस्था की थी, जो सतत संचालित हो रही है। इसमें ऋषि उद्यान की वृहद् भोजनशाला में **ऋषि उद्यान में निवास करने वाले योगसाधकों, संन्यासियों-वानप्रस्थियों, ब्रह्मचारियों व आचार्यों के भोजन, दुग्ध, फल इत्यादि की व्यवस्था की जाती है।**

ऋषि उद्यान में आने वाले अतिथियों, विद्वानों, दर्शनार्थियों इत्यादि के निवास तथा भोजनादि की व्यवस्था इसके अन्तर्गत संचालित की जाती है।

आर्य दानदाता-परिवारों के सहयोग से ही यह अतिथि-यज्ञ सम्भव हो पा रहा है। अतः हम सभी आर्य परिवारों का दायित्व एवं कर्त्तव्य है कि हम इस यज्ञ में होता बनकर निरन्तर दान-रूपी आहुति प्रदान कर पुण्य के भागी बनें। विभिन्न संस्कारों एवं अन्य शुभावसरों पर अपनी दान-रूपी आहुति देना न भूलें, ताकि यह लोकोपकारी अतिथि यज्ञ निरन्तर चलता रहे।

इस अतिथि यज्ञ हेतु आप **५१००/-(पाँच हजार एक सौ रुपये) प्रतिवर्ष** भेजकर अपना सहयोग प्रदान कर अनुग्रहीत करें।

ओम्मुनि — **कन्हैयालाल आर्य**

प्रधान — **मन्त्री**

प्रवेश सूचना

परोपकारिणी सभा, अजमेर द्वारा ऋषि उद्यान, अजमेर में सञ्चालित आर्ष गुरुकुल में प्रवेश प्रारम्भ हैं। वैदिक धर्म के उपदेशक-प्रचारक बनने के इच्छुक युवा प्रवेश हेतु शीघ्र आवेदन करें।

प्रवेश हेतु अविवाहित एवं आठवीं उत्तीर्ण होना अनिवार्य है। भोजन एवं आवास की नि:शुल्क सुविधा है। **सम्पर्क सूत्रः ८८९०३१६९६१**

प्रधान — **मन्त्री**

९९५०९९९६७९ — **९९११९७०७३**

'सत्यार्थ प्रकाश' एवं 'महर्षि दयानन्द जीवन-चरित्र' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति

महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' ने अविवेक, पाखण्ड, अन्धविश्वासों का दमन कर समाज में एक नई क्रान्ति 'वैचारिक क्रान्ति' को जन्म दिया। अत: परोपकारिणी सभा ने ७ वर्ष पूर्व 'विश्व पुस्तक मेला' दिल्ली में प्रतिवर्ष **'सत्यार्थप्रकाश'** के साथ **'महर्षि का जीवन-चरित्र'** एवं **'आर्याभिविनय'** पुस्तक का वितरण करने की योजना बनाई, जो निरन्तर चल रही है।

एक सैट की छपाई का खर्च लगभग १५० रु. आता है। **५०० से कम प्रतियों पर स्टिकर लगाकर तथा ५०० या अधिक प्रतियों पर दानी व्यक्ति का नाम छपवाकर वितरित किया जाएगा।**

१५० रु. प्रति सैट के अनुसार आप दान देकर अपनी ओर से, अपने नाम से पुस्तक वितरित करा सकते हैं।

अपने दान के साथ 'सत्यार्थप्रकाश वितरण' अवश्य लिख देवें, और साथ ही अपना नाम एवं पता भी। यह दान आप परोपकारिणी सभा के खाते में ऑनलाइन, चैक द्वारा या फिर परोपकारिणी सभा के पते पर मनिऑर्डर भी कर सकते हैं।

न्यूनतम	२० प्रतियाँ	३०००/- रु.
	३० प्रतियाँ	४५००/- रु.
	५० प्रतियाँ	७५००/- रु.
	१०० प्रतियाँ	१५०००/- रु.
	५०० प्रतियाँ	७५०००/- रु.
	१००० प्रतियाँ	१,५०,०००/- रु.

इस प्रकार जितनी अधिक प्रतियाँ बाँटना चाहें, उतनी राशि दूरभाष संख्या के साथ भेज देवें। धन्यवाद।

मन्त्री, परोपकारिणी सभा, अजमेर

yono SBI | SBI Payments

MERCHANT NAME : PROPKARNI SABHA
UPI ID : PROPKARNI@SBI

SCAN & PAY

BHIM
SBI Pay
BHIM UPI

सभा प्रकल्पों में सहयोग करने हेतु बैंक विवरण

खाताधारक का नाम

परोपकारिणी सभा, अजमेर

(PAROPKARINI SABHA AJMER)

बैंक का नाम

भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी चौक, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-

10158172715

IFSC - SBIN0031588

UPI ID : PROPKARNI@SBI

परोपकारिणी सभा व आर्यवीर दल अजमेर के संयुक्त तत्वाधान में
आयोजित शिविर के समापन समारोह का दृश्य

परोपकारिणी सभा के अंतर्गत संचालित गुरुकुल जमानी आश्रम
मातुश्री काशीबा हरि भाई गोठी चैरिटेबल ट्रस्ट कर्मयोगी परिवार सूरत की ओर से नए
भवन का निर्माण शुरु। इस मौके पर आयोजित यज्ञ आदि के कार्यक्रम में ट्रस्ट के कई पदाधिकारी भी उपस्थित थे।

आर जे/ए जे/80/2024-2026 तक   प्रेषण : १४-१५ जून २०२४   आर.एन.आई. ३९५९/५९

अनन्य ईश्वर भक्त, योगेश्वर

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती

की

२०० वीं जयन्ती के अवसर पर

परोपकारिणी सभा अजमेर द्वारा आयोजित

दिव्य एवं भव्य

अन्तर्राष्ट्रीय ऋषि मेला

१८-२० अक्टूबर २०२४

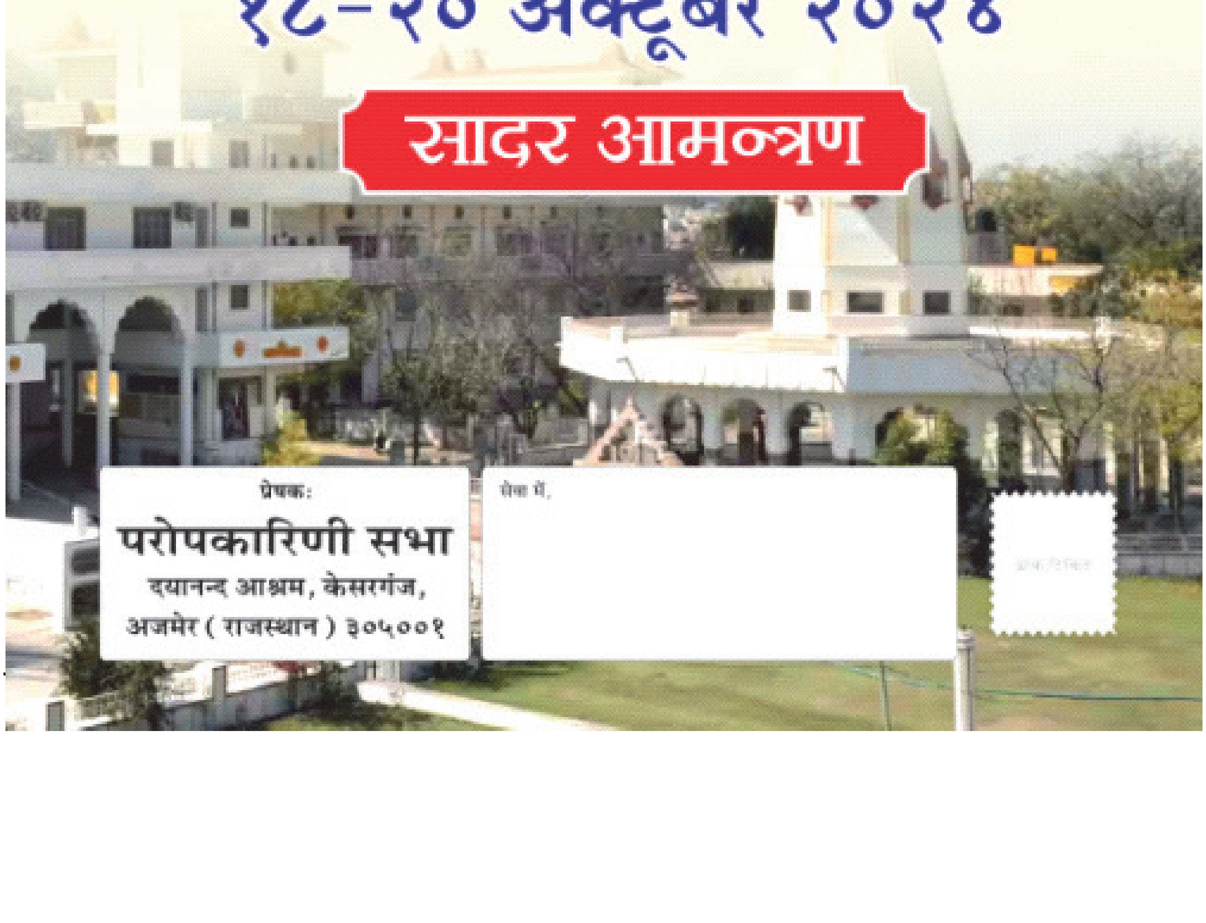

सादर आमन्त्रण

प्रेषक:

परोपकारिणी सभा

दयानन्द आश्रम, केसरगंज,

अजमेर (राजस्थान) ३०५००१

सेवा में,

डाक टिकट